हिन्दी की

आदर्श कहानियाँ

सम्पादक

प्रेमचन्द

प्रकाशक

सूची

नवाँ संस्करण : १९५४] [मूल्य एक रुपया आठ आना]

मुद्रक—नया हिन्द प्रेस, १४५, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

भूमिका

आधुनिक साहित्य में गद्य की प्रधानता है और उस गद्य में भी 'आख्यान' की। आख्यान या कथानक-प्रधान साहित्य में भी जितना बोल-बाला कहानी का है उतना और किसी का नहीं। आधुनिक युग के मनुष्य को इतना अवकाश नहीं कि वह लम्बे-लम्बे उपन्यास पढ़ सके। अत: पाठकों की बहुसंख्या को कहानी की माँग रहती है। वर्तमान युग उपन्यासों और कहानियों का युग है।

कहानी की परिभाषा—कहानी है क्या ? इसकी परिभापा क्या होगी ? परिभाषा उतनी आसान नहीं। साधारण रूप से काम चलाने के लिए मिस्टर फ़ोर्स्टर की परिभाषा कुछ काम दे सकती है—आप कहते हैं It is a series of crisis, relative to each other and bringing about a climax. अर्थात् कहानी परस्पर सम्बद्ध महत्त्व-पूर्ण घटनाओं का क्रम है जो किसी परिणाम पर पहुँचाती है। साहित्य मानव-जीवन का चित्र माना गया है, तो कहानी को हम मानव-जीवन की एक झलक कह सकते हैं।

वर्तमान युग में कहानीकला ने काफ़ी उन्नति कर ली है, और हम नहीं कह सकते अभी उसकी चरम सीमा कहाँ होगी। पुराने ज़माने की आख्यायिका और आजकल की 'गल्प' वा कहानी में बहुत अन्तर हो गया है। मिस्टर ब्रेण्डर मैथ्यू ने Philosophy of Short Story पर लिखते समय एक स्थान पर लिखा है—

'A true short story is something other and something more than mere short story, which is short. A true short story differs from the novel chiefly in its essentials—unity of expression. In a far more exact and precise use of words a short story has unity which a novel cannot have... A short story deals with single character or a series of emotions called forth by a single situation. The short story must be an organic whole.'

कहानी की सफलता—आधुनिक कहानी में सर्वाङ्गपूर्णता और चुस्ती बहुत आवश्यक वस्तु है। मिस्टर एडगर एलन पो—इसे Totality कहते हैं। कहानी ऐसी होनी चाहिए जिसे पढ़ने के पश्चात् पाठकों को किसी कमी का अनुभव न हो। एक स्थान पर मिस्टर Poe अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं—

'In the whole composition there should be no word written of which the tendency, direct or indirect, is not to the one pre-established design. The idea of the tale is presented unblemished, be use undisturbed, is an end unattainable by the novel. Undue brevity is just as exceptionable here, as in a poem, but undue length yet more to be avoided.

कहानी और उपन्यास—कहानी और उपन्यास में केवल 'विस्तार' ही का अन्तर नहीं है, वरन् दोनों दो भिन्न वस्तुएँ हैं। दोनों के उद्देश्य और प्रकृति में महान अन्तर है। साधारणत: कथा-साहित्य के तीन भेद उपलब्ध हैं। उपन्यास, लघु उपन्यास और कहानी। उपन्यास का युग पाश्चात्य देशों में जा रहा है। मिस्टर किप्लिङ्ग ने इसी हेतु कहा था—

"The three-volume novel is extinct."

—अत: लघु उपन्यासों का प्रचार बढ़ रहा है। दोनों में केवल 'आकार' का अन्तर नहीं है। लघु उपन्यास में कला का अधिक परिपक्व रूप मिलता है। एक आलोचक लिखता है—Modern tendency is to write short novels. Now the Novelette is more artistic, condensed with extensive narration and less extensive view of men and matters.

कहानी का विस्तार—लघु उपन्यासों की अपेक्षा कहानी की कला और परिपक्व है। उसमें और भी चुस्ती और संक्षेप में सर्वाङ्गपूर्णता होनी चाहिए। आकार वा विस्तार की दृष्टि से कहानियों के बारे में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। परन्तु कहानी का विस्तार उतना ही उचित

समझा जाता है कि उसे एक बैठक में समाप्त किया जा सके। पाश्चात्य आलोचकों ने 'संक्षेप' पर बहुत जोर नहीं दिया है जितना कि 'एक दौर' पर। यदि पाठक बिना सम्पूर्ण कहानी पढ़े उठता नहीं और उसकी बैठक मन उबानेवाली न हुई तो साधारणतः आध घण्टे तक की कहानी अनुचित न मानी जायगी। परन्तु यह 'समय' भी अपने-अपने देश के अनुसार होगा। पाश्चात्य देश में जहाँ समय बहुत महँगी चीज है, वहाँ पन्द्रह मिनट से अधिक समय लेनेवाली कहानियाँ बहुत लम्बी समझी जाती हैं।

कहानी की सीमा—कहानी की सफलता 'कहने' पर अधिक निर्भर है। यदि लेखक कहानी के आरम्भ से अन्त तक पाठकों को अपने साथ रख सका और उसने कहानी के उद्देश्य और परिणाम में एकता स्थापित कर दी तो उसकी कहानी साहित्यिक दृष्टि से भी अच्छी कही जायगी। उपन्यास और कहानी के तत्त्व प्रायः समान ही हैं, पर उपन्यासों की अपेक्षा छोटी कहानी लिखना अधिक कठिन है। उसमें अधिक कुशलता की जरूरत है। उपन्यास में मैदान विस्तृत है। कहानी का दायरा नपा-तुला है।

कहानी के तत्त्व—कहानी में 'वस्तु' या प्लाट होना परमावश्यक है। बिना प्लाट के कहानी नहीं खड़ी होती। इस हेतु 'पात्र' भी आवश्यक हैं, जिसके आचरणों से प्लाट आगे बढ़ता है। इस दोनों प्लाट और पात्र के अतिरिक्त कथोपकथन, वातावरण, शैली, उद्योग आदि भी कहानी के जरूरी अङ्ग समझे जाते हैं। इन पर ध्यान रखने से कहानी अच्छी उतरती है।

कहानी का आरम्भ—कहानी का अध्ययन करते समय तथा उसकी आलोचनात्मक परीक्षा करते समय हमें सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान रखना होता है कि कहानी का आरम्भ कैसा हुआ है। क्या प्रथम वाक्य से ही हमारा ध्यान कहानी के मुख्य अङ्ग की ओर आकर्षित होता है? आधुनिक युग में समय का मूल्य अधिक है, अवकाश का अभाव हर जगह है। अतः पाठक सीधे कहानी पर आना चाहता है। यदि लेखक आरम्भ में व्यर्थ भूमिका बाँधता है तो यह कहानी का दोष समझा जायगा। हिन्दी कहानियों में अभी इस पर अधिक जोर नहीं दिया जाता।

कथावस्तु—कहानी की कथावस्तु वा प्लाट ऐसा होना चाहिए जिसका

विकास कहानी के आरम्भ से होकर अन्त तक हो और वह ऐसा स्वाभाविक हो जो हमें सन्तुष्ट कर सके। कहानी की कथावस्तु में सम्भव और असम्भव का प्रश्न उतना नहीं, जितना स्वाभाविक और अस्वाभाविक का है। कथानक का विकास ऐसा होना चाहिए कि पढ़नेवाले को वह अस्वाभाविक न प्रतीत हो।

कथोपकथन—कथोपकथन की आवश्यकता कहानियों में सजीवता और यथार्थता लाने के लिए पड़ती है। जब हम दो पात्रों को बातचीत करते सुनते हैं, हमें उनकी बातों में अधिक आनन्द मिलता है। उनकी बातचीत सुनकर हमारे मन में उनके चरित्र आदि के प्रति एक कल्पना उत्पन्न होती है और हम उन पात्रों में अधिक दिलचस्पी लेने लगते हैं। यदि कहानी में कथोपकथन कम हैं वा बिलकुल नहीं हैं तो उसका चमत्कार नष्ट हो जाता है। कथोपकथन कहानी की जान है। इससे पात्र और प्लाट दोनों का सुन्दर विकास होता है। परन्तु कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए; जिस प्रकार बातचीत करते समय केवल बातचीत सुनकर एक तीसरा व्यक्ति दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की बात समझता है; उनके लहजे, वाक्य-विन्यास आदि से उनके चरित्र की कल्पना कर लेता है; उसी प्रकार कहानी में भी कथोपकथन इतना स्वाभाविक होना चाहिए जिससे पात्रों के व्यक्तित्व का विकास न रुके। निर्जीव कथोपकथन वे होते हैं जिनमें दो आदमी बातचीत करते हुए दिखाये जाते हैं—दो व्यक्ति नहीं, सिर्फ़ दो 'मुँह' जो केवल बोलते हैं।

वातावरण—देश, काल, परिस्थिति—को वातावरण कहते हैं। यह हमारे कथानक का आरम्भ होता है, अन्त होता है—तो किसी वातावरण की निर्दोषता भी आवश्यक है। यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि रह गयी तो सारा व्यापार उपहास्य प्रतीत होने लगेगा। जिस समय का, जिस स्थान वा जिस परिस्थिति का उल्लेख कहानी में हो—उसे सच्चा, स्वाभाविक रहना चाहिए। वातावरण कहानी में इस प्रकार है जैसे दावत में पकवानों के रखने के बर्तन और भोजनशाला। हमारा ध्यान खाद्य-पदार्थों पर अधिक होगा—बर्तनों पर कम। परन्तु खाद्य-पदार्थों के अनुरूप ही पात्र भी होना चाहिए, भोजन का स्थान भी होना चाहिए। हम दावत के वक्त भोजनों से अपना ध्यान हटाकर भोजनशाला वा बर्तनों पर कभी न जाने देंगे। हाँ, अज्ञात रूप से

उनका प्रभाव हमारे मन पर पड़ेगा और हम बड़ी प्रसन्नता से भोजन करेंगे। इसी प्रकार कहानी में 'वातावरण' प्रधान लक्ष्य न होना चाहिए। प्राचीन हिन्दी काव्य में 'प्रकृति' उद्दीपन के रूप में आती थी। कहानी में 'वातावरण' का उपयोग इस प्रकार होना चाहिए कि कथावस्तु के स्वाभाविक विकास में बाधा न पड़े, पर साथ-ही-साथ उसका वर्णन आवश्यकता से अधिक न हो कि हम मुख्य कथा की ओर से ध्यान हटाकर 'वातावरण' की ओर आकृष्ट हों। कहानी में लम्बे-लम्बे प्रकृतिवर्णन, वा सविस्तार किसी स्थान का वर्णन अनावश्यक है। केवल 'विशदता' लेखक का उद्देश्य न होना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो कहानी की सुन्दरता नष्ट हो जायगी।

पात्र—कहानी में पात्र उतना ही आवश्यक है, जितना उपन्यास में। परन्तु उपन्यास की तरह कहानी में बहुत-से पात्रों के लिए स्थान नहीं, अवसर भी नहीं। कहानी में अधिक पात्रों का होना कहानी की चुस्ती बिगाड़ देता है। हमारी संवेदना इतनी ओर बँट जाती है कि हम कहानी का मज़ा नहीं पाते। कहानी में दो-तीन से अधिक पात्रों का होना ठीक नहीं। मुख्य पात्र के चरित्र का आरम्भ–कहानी के आरम्भ में हो जाना चाहिए। हमारी संवेदना का प्रथम पात्र कहानी का नायक या प्रधान पात्र होना चाहिए, जिसमें हम बराबर उसके साथ अंत तक रहें। जब कभी कहानी में 'प्रधान पात्र' बहुत बाद में आता है, उस समय कहानी पढ़नेवालों को आरम्भ में आये हुए पात्र से अपनी सहानुभूति हटाकर दूसर के साथ करनी पड़ती है। उससे कहानी का प्रभाव नष्ट हो जाता है। कहानी में मुख्य पात्र आरम्भ से अन्त तक रहना चाहिए और उसका चरित्र निरन्तर प्रकाश में आना चाहिए।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण के स्वाभाविक विकास के लिए कहानी में अवसर नहीं। उस हेतु तो उपन्यास ही उचित स्थान है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी में पात्रों का चरित्र चित्रण हो ही नहीं, उपन्यास में जहाँ हम एक पात्र के चरित्र का क्रम-विकास देखते हैं—वहाँ कहानी में हम उसके चरित्र की एक झलक देखते हैं। केवल एक अंश को देखकर ही हम पात्र के संपूर्ण चरित्र का अनुमान करते हैं—परन्तु लेखक की कल्पना में वह पात्र तथा उसका पूरा चरित्र जैसे वर्तमान रहता है—हमें वह कहानी में

केवल एक झलक दिखलाता है—उसी झलक से हम संपूर्ण का अनुमान करते हैं। परन्तु वह झलक एक संपूर्ण और स्वाभाविक चरित्र का अंग होती है। कहानी के पात्रों के चरित्र के विकास के लिए उसमें पूरा अवसर नहीं है, पर उसके विकास की स्वाभाविक गति का परिचय किसी-न-किसी प्रकार पाठकों को मिलना चाहिए, अन्यथा वह पात्र असम्भव होगा और उसका चरित्र अस्वाभाविक होगा। मानव-प्रकृति तथा मनोविज्ञान के सिद्धांतों को न सन्तुष्ट करनेवाले चरित्र-चित्रण कहानी को असफल बनाते हैं।

शैली—हम यह कह आये हैं कि कहानी का मज़ा कहने में है और कहने का तरीक़ा—हर आदमी का जुदा-जुदा होता है। कला की सीमा नहीं और न कलाकार के लिए कोई निश्चित मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। यह बतलाना बहुत कठिन है कि कहानी लिखी जाय तो ऐसे-ऐसे ही लिखी जाय। प्रत्येक लेखक की अपनी शैली होती है। परन्तु आलोचनात्मक दृष्टि से देखना यह है कि उक्त लेखक की शैली का प्रभाव हम पर क्या पड़ता है—उसकी शैली कहानी को कहाँ तक सफल बनाती है। कहानी के तीन मुख्य अंग हैं—आरंभ, प्रसार और अंत। तीनों में सामंजस्य होना चाहिए। लिखते समय लेखक की भाषा, वाक्यविन्यास, उक्तियाँ आदि, सभी चमत्कार लाती हैं। कहानी की सफलता बहुत कुछ इन पर भी निर्भर है।

लेखन-प्रणाली—कहानी लिखने के अभी तक बहुत से तरीक़े देखे गये हैं, उनमें कुछ मुख्य ये हैं—

(१) **वर्णनात्मक-प्रणाली वा ऐतिहासिक प्रणाली**—इसमें लेखक एक तीसरा व्यक्ति होकर लिखता है। मानो वह इतिहास लिख रहा हो।

(२) **आत्मचरित्र-प्रणाली**—इसमें मानो लेखक स्वयं अपनी कथा कह रहा हो।

(३) **पत्र-प्रणाली**—कुछ पत्रों द्वारा समस्त घटना और कथा कही जाती है।

(४) **डायरी-प्रणाली**—इसमें डायरी के पृष्ठों के बहाने सारी घटना वा कथा पाठकों पर प्रकट होती है।

कुछ लोग एक पाँचवीं प्रणाली का उल्लेख भी करते हैं—वह कथोपकथन प्रणाली है। परन्तु केवल बातचीत में कहानी अच्छी न होगी। इस तरह की कहानी बहुत ही कम देखने में आती है। प्रचलित प्रणाली में ऐतिहासिक और आत्म-चरित्र प्रणाली ही दी हैं। ये ही अधिकतर काम में आती हैं। कथोपकथन-प्रणाली का उपयोग आजकल रेडियो में काम आवेगा। इसमें इसी प्रणाली द्वारा कहानी कहना संभव है। परन्तु ऐसी दशा में भी यह कहानी न होकर 'ड्रामा' अधिक होगा। कहानी कथोपकथन-प्रधान वस्तु नहीं वरन् कथोपकथन की आवश्यकता इसमें Dramatic touch देने के लिए होती है। इस प्रकार संक्षेप में और स्वाभाविक रूप में कहानी चलती है। कथोपकथन से कहानी में सजीवता आती है—यथार्थता का बोध होता है।

शीर्षक—कहानी का शीर्षक किसी उद्देश्य का सूचक होना चाहिए। शीर्षक की उपयुक्तता पर कहानी की सफलता बहुत कुछ निर्भर है। शीर्षक है क्या? जिस दृष्टिकोण से लेखक कहानी की रचना करता है, उसी मार्ग का द्वार मानो उस कहानी का शीर्षक है। यदि लेखक शीर्षक ठीक नहीं देता तो वह मानो अपनी कहानी की भूलभूलैयाँ का ठीक द्वार पाठकों को नहीं बतलाता। उसका फल यह होता है कि पाठक एक दूसरे मार्ग से प्रवेश कर इष्ट स्थान को बिना देखे ही लौट आते हैं और कहानी की विशेषता वे देख नहीं पाते। इसलिए शीर्षक ऐसा होना चाहिए जो कहानी की सांकेतिक कुञ्जी हो। इसी हेतु एक पाश्चात्य लेखक Donald Maconochie लिखता है—

"Keep the title in its proper proportion to the nature and interest of the story."

उद्देश्य—कहानी कहने और सुनने की वस्तु है। हम वही बात कहना और सुनना पसन्द करते हैं जो हमारे जीवन के निकट हो, जिसमें हमारी सहानुभूति हो। जिसका हमारे जीवन से किसी प्रकार भी सम्पर्क नहीं उसे हम पढ़ना वा सुनना व्यर्थ समझेंगे। प्राचीन समय में ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखी गयीं, जिनका उद्देश्य जीवन की किसी-न-किसी समस्या पर प्रकाश डालना था। धीरे-धीरे कहानियों में 'शिक्षाप्रद' परिणाम रखने की

परिपाटी चल निकली। आधुनिक युग में ज्ञान-विकास अधिक जागृत है। हम किसी वस्तु को जानना चाहते —क्यों ? केवल जानने के लिए। अतः अब इस युग में कहानी पर यह प्रतिबन्ध लगाना व्यर्थ है। कहानी की परीक्षा इस दृष्टि से होगी कि उसने हमारा मनोरंजन किया वा नहीं ! उसे पढ़ते समय हम अपने को भूल सके वा नहीं। यदि हाँ, तो कहानी की सफलता निर्विवाद है।

आधुनिक युग का आलोचक कहता है—कहानी-लेखक का कर्तव्य उपदेशक होना नहीं। उसका फ़र्ज़ यह है कि कहानी अधिक-से-अधिक लोगों को प्रसन्न करे। कहानी में शिक्षाप्रद परिणाम न हो, इसका अर्थ यह नहीं कि कहानी उद्देश्यहीन होगी। लेखक जब किसी कहानी की सृष्टि करता है तो वह अपने प्लाट, पात्र आदि का नियन्त्रण अपने इच्छानुसार करता है। उसकी अपनी इच्छा में उसकी आत्मा का हाथ रहता है—यही उसका अपनापन है—उसकी मौलिकता है। उसी अपनेपन के कारण उसका अपना निजी दृष्टिकोण होता है। यही दृष्टिकोण उस कहानी का उद्देश्य निर्धारित करता है। कभी-कभी कहानी-लेखक केवल घटनाओं के क्रम, पात्रों के आचरण और कथोपकथन के बहाने अपना उद्देश्य प्रकट करता है, कभी-कभी वह अन्त में स्पष्ट कह देता है। स्पष्ट कहने से अधिक अच्छा न कहकर केवल संकेत मात्र देना वा ऐसी परिस्थिति की सृष्टि करना जिसमें एक केवल वही परिणाम निकले, जिसे लेखक चाहता है—ऐसा करना अधिक कलात्मक होता है।

कहानियों के भेद—लेखक के अपने लक्ष्य के अनुसार तथा प्लाट के अनुसार कहानी के अनेक भेद होते हैं। पहले तो सुखान्त और दुःखान्त मुख्य भेद होंगे। जिस कहानी के अन्त में किसी उद्देश्य की प्राप्ति होती है वह सुखान्त होगी। इसके विपरीत यदि हुआ तो दुःखान्त। दुःखान्त का यह अर्थ नहीं कि अन्त में मृत्यु हुई वा दुःख आ पड़ा, वरन् यह कि 'फल' की प्राप्ति नहीं हुई। किसी समय जब अधिकतर कहानियाँ 'प्रेमगाथा' के रूप में होती थीं, उस समय 'संयोगान्त' और 'वियोगान्त' रूप कहा जाता था। इस युग में कहानियों की कथावस्तु केवल 'प्रेम' नहीं वरन् जीवन की

समस्त समस्याएँ हैं। अतः अब सुखान्त या दुःखान्त ही उपयुक्त अन्त होंगे।

कुछ कहानियों का उद्देश्य केवल पाठकों को आदि से अन्त तक लोमहर्षक घटनाओं में उलझाये रखना और एक के बाद दूसरा रहस्योद्घाटन करते रहना है। ऐसी कहानियों को जासूसी कहानियाँ कहते हैं। हिन्दी में पहले ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी जाती थीं। कुछ कहानियों की कथावस्तु 'प्रेम' होता है जिसमें एक नायक किसी नायिका पर मोहित होता है, उसे प्राप्त करता है, वा नहीं प्राप्त करता। ऐसी कहानियों को प्रेम कहानी Love story कहते हैं। साहस-प्रधान कहानियों का हिन्दी में अभाव है पर अन्य देशों में बालक-बालिकाओं के लिए ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी जाती हैं। जिन कहानियों में किसी पात्र का चरित्र-चित्रण प्रधान रहता है, उन्हें स्केच वा शब्दचित्र कहते हैं—परन्तु अधिकतर ऐसे स्केच कहानी की श्रेणी में नहीं जाते। प्रायः वे हास्यरस-प्रधान होते हैं और हास्यरस के निबन्धों में उनकी गणना होती है। हास्यरस-प्रधान कहानियों का उद्देश्य केवल हँसाना होता है। हिन्दी में कुछ अन्योक्ति-प्रधान Allegorical कहानियाँ भी देखने में आती हैं—परन्तु उन्हें कहानी न कहकर कुछ और ही कहना उचित है—गद्यकाव्य, निबन्ध, जो कुछ भी हो।

कहानी के दोष—कहानी अपने उद्देश्य में तभी असफल होती है, जब वह पाठकों को सन्तुष्ट नहीं कर पाती। और सन्तुष्ट करने के लिए सबसे बड़ा गुण उसमें यह होना चाहिए कि उसमें कोई वस्तु अस्वाभाविक न हो। असामञ्जस्य, विरोध, शिथिलता, असम्भवता आदि ही इसके कारण होते हैं। आरम्भ से अन्त तक कोई ऐसी बात न हो कि पाठक रुककर कहने लगे—'यह व्यर्थ की बात है, यह असम्भव है'—आरम्भ से ही जो कहानी पाठकों की एकाग्रता क । अन्त तक न निबाह सकी, वह कभी नहीं सफल कही जायगी।

प्लाट की मौलिकता कहानी में भारी गुण है, पर यह मौलिकता है क्या ? असली मौलिकता नवीन समस्या वा घटना की सृष्टि में नहीं वरन् उसकी व्याख्या, उसके निर्वाह पर है। मौलिकता कहानी की बन्दिश और निर्वाह में है। यदि हम चाहें तो पुरानी-से-पुरानी समस्या को नया रूप दे सकते हैं।

प्रेम, विवाह, विच्छेद आदि समस्याएँ आज की नहीं, पर सभी अपनी-अपनी सूझ से नई कहानी लिख सकते हैं। मौलिकता कहने की कला में है, तथ्य की व्याख्या में है।

भाषा की शिथिलता, दुरूहता, उखड़ापन आदि भी कहानी के सौन्दर्य को नष्ट करते हैं। वाक्यों का विन्यास स्वभाविक होना चाहिए। लम्बे-लम्बे समास, संस्कृतगर्भित हिन्दी आदि से कहानी का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। भावों की व्यञ्जना थोड़े शब्दों में अधिक स्वाभाविक रूप से होती है। क्रोध में हम कविता नहीं रचने लगते। विरह में विरही मेघदूत की सृष्टि नहीं करने बैठेगा। बातचीत में अधिक विस्तार, लेक्चरबाज़ी वग़ैरह अस्वाभाविक जान पड़ते।

कहानी की धारा में आरम्भ से अन्त तक एक गति होनी चाहिए—कहीं रुकावट अच्छी नहीं लगती। उससे पाठक ऊब जाते हैं। ऊबना ही उसकी असफलता का प्रमाण है।

कहानी की उत्पत्ति—मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपनी कहना और दूसरे की सुनना चाहता है। यदि मनुष्य में आत्माभिव्यञ्जन की प्रकृति न होती तो आज साहित्य का अस्तित्व ही न होता—हम क्यों लिखते, क्या लिखते, किसके लिए लिखते? आत्माभिव्यञ्जन की प्रकृति ही हमें अपना दुःख-सुख, राग-द्वेष, आदि भावनाएँ दूसरों से कहने पर मजबूर करती हैं। हम दूसरों की इसी लिए सुनते हैं कि वे भावनाएँ हमें 'आत्मीय' सी लगती हैं। यदि उनका हमारे जीवन से कोई लगाव न हो तो हम उन्हें कभी न सुनें। यदि श्रोता ही न हो तो वक्ता ही क्या करेगा? कहानियों के उत्पत्ति के साथ ही साहित्य का जन्म हुआ होगा, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, अथवा आदि साहित्य कहानी ही रहा होगा—यह कहना अधिक उपयुक्त होगा।

कहानी का सम्बन्ध हमारे निकटतम जीवन से है। विगत का इतिहास हम कथा कहानी के ही रूप में स्मरण रखते आये। मनुष्य का जीवन, उसके व्यापार, कहानी नहीं तो हैं क्या? हम जब अपने विगत के अनुभवों का वा दूसरों पर बीती घटनाओं का वर्णन करने बैठते हैं उस समय हम कहानी ही कहते हैं। आज हम गद्य के विकास के युग में कहानी से एक

विशेष प्रकार की रचना का परिचय देते हैं, परन्तु पद्य के युग में समस्त महाकाव्य, पुराण, वीरकाव्य का आधार कथा वा कहानी ही तो था। जिस रचना में मानव-व्यापारों का वर्णन आया—क्या वह 'कहानी' की आत्मा के बिना जीवित रह सकती है ?

प्राचीन भारत में कहानी-साहित्य—संसार के समस्त साहित्यों में भारतीय साहित्य प्राचीन है। हमारे सर्वप्राचीन ग्रन्थ वेदों में कहानियाँ मिलती हैं। एक नहीं अनेक कथाएँ वेदों में भरी पड़ी हैं। एक ऋषि इन्द्र को मनाते हैं, यज्ञ में उनका आह्वान करते हैं। उन्हें हरे-हरे कोमल कुश पर बैठाते हैं। उन्हें सोम रस पिला कर प्रसन्न करते हैं। वृत्रासुर को मारने के हेतु तैयार करते हैं—आदि-आदि। वेदों में संवाद हैं, चरित्र हैं...ये ही तो कहानी के तत्त्व हैं। माना वे आधुनिक रूप में नहीं—पर बिन्दु रूप में तो कहानी के सभी तत्त्व प्राचीन वेदों में वर्तमान हैं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ—सभी वस्तुओं का विकास हुआ, उनकी रूपरेखा बदलती गयी। साहित्य भी बदला। संस्कृत काल में कथा-साहित्य का ज़ोर बढ़ा। कादम्बरी और दशकुमार-चरित, हितोपदेश, पञ्च-तंत्र आदि अमर ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं; बौद्धकालीन भारत में 'जातक' कथाओं का प्रचार था। इनका प्रचार तो यहाँ तक बढ़ा कि भारत के समीप के अन्य देशों में इनका अनुवाद हुआ।

हिन्दी भाषा के आरम्भ के युग में काव्य-साहित्य का ज़ोर था, फिर भी कथानकों की रचना बन्द न हुई थी। हिन्दी में कितने कवियों ने आख्यानक काव्य लिखे। महाकाव्यों का प्रचार कम होने पर यद्यपि. मुक्तक काव्य ही शेष रह गये, फिर भी कथानक साहित्य की धारा मरी नहीं। गद्य के विकास के साथ-साथ उसका रूप पुनः प्रकट होने लगा। सन् १८०३ में सैयद इन्शा-अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जिसको हम लोग खड़ी बोली की प्रथम कहानी कह सकते हैं। इसी समय लल्लूलाल ने प्रेमसागर, सदल-मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान लिखा। लल्लूलालजी ने तो बैतालपचीसी, सिंहा-सनबत्तीसी तथा शुकबहत्तरी—नामक पुस्तकें भी लिखीं। यद्यपि ये अनुवाद थीं, पर कथानक-सहित्य के आरम्भिक युग में ये भी क्या कम थीं।

आधुनिक कहानी-साहित्य—आधुनिक कहानी-सहित्य का विकास प्राचीनधारा से कोई सम्वन्ध नहीं रखता। उसकी शैली पाश्चात्य ढंग का अनुसरण करती है। हिन्दी में कहानी लिखने का चलन बँगला के अनुकरण से हुआ। बंगाल में अंग्रेजों का आगमन बहुत पहले हुआ था। बंगालवालों पर अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य का प्रभाव पहले पड़ा। सर्व-प्रथम बंगाल में 'गल्प' नाम से छोटी-छोटी कहानियों के लिखने का प्रचार बढ़ा। उनकी देखादेखी हिन्दीवालों ने भी उन्हें पढ़ने के लिए उनका अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया। उसी प्रकार की अनुवादित कहानियाँ सर्वप्रथम 'सरस्वती' में छपीं। इन्हीं दिनों बाबू गिरिजाकुमार घोष ने कुछ अनुवाद, कुछ स्वतंत्र अनुवाद और कुछ अपनी मौलिक कहानियाँ 'सरस्वती' में छपाई थीं।

हिन्दी में अपनी और मौलिक कहानियों का प्रचार 'इन्दु' पत्रिका से हुआ। 'सरस्वती' में भी पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने 'इन्दुमती' नामक एक कहानी लिखी थी। यह सन् १९०२ की बात है। सन् १९११ में जयशंकर प्रसाद ने 'इन्दु' में मौलिक कहानी लिखी। इसके पश्चात् तो कहानी लिखना आरम्भ हो गया। हिन्दी कहानी का वर्तमान युग 'इन्दु' से आरम्भ होता है।

नवयुग की कहानी—हिन्दी कहानी साहित्य में युगान्तर उपस्थित करनेवाले प्रेमचन्द हैं। उसके पहले आप उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी में आते ही आपका आदर हुआ—फिर तो आप हिन्दी के हो गये। आपके पश्चात् हिन्दी कहानी का ज़ोर बढ़ता ही गया और अब भी बढ़ता ही जाता है। हिन्दी की पत्रिकाओं की संख्या भी पहले से बहुत बढ़ गयी। शायद ही कोई ऐसा पत्र हो—क्या मासिक, क्या साप्ताहिक वा दैनिक जिसमें कहानी को स्थान न मिले। गद्य साहित्य में आजकल उपन्यास और विशेषकर कहानियों की प्रधानता हो रही है। ये लक्षण अच्छे हैं। अब कहानी कला का भी विकास होता जा रहा है। अच्छी-अच्छी कहानियाँ देखने में आ रही हैं। उनमें कुछ निश्चय ऐसी हैं जो संसार की श्रेष्ठ कहानियों में स्थान पा सकती हैं। आधुनिक कहानियों का विषय, लेखन-शैली आदि भी विभिन्न और मौलिक होती जा रही हैं। परन्तु

अधिकतर जैसा बाबू श्यामसुन्दरदास जी कहते हैं—"घटनाओं की सहायता से पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं को चित्रित करना आजकल की कहानियों का मुख्य लक्ष्य हो रहा है। समाज की कुरीतियों के प्रकाशनार्थ भी कहानियाँ लिखी जाती हैं, ऐतिहासक तत्त्वों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से भी कहानी लिखी जाती हैं और दार्शनिक कहानियाँ भी लिखी जाती हैं।"

कुछ कहानी-लेखक और उनकी शैली—इस संग्रह में यह असम्भव था कि हिन्दी के समस्त कहानी-लेखकों की एक-एक कहानी रखी जाती। विस्तारभय के अतिरिक्त पाठ्य-क्रम की दृष्टि से सभी लेखकों की कहानी छात्रों के काम की भी नहीं। परन्तु जहाँ तक हो सका है, अच्छे-अच्छे कहानी-लेखकों की एक ऐसी रचना चुनी गई है जो उनकी शैली की परिचायक होते हुए हमारे संग्रह के योग्य भी हो। यहाँ हम एक-एक कर उन लेखकों की विशेषता पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं।

गुलेरीजी—श्री चन्द्रधरजी गुलेरी की केवल एक ही कहानी मिलती है, परन्तु वह संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में आदर पा सकती है। यदि २८ वर्ष की अल्पायु में उनकी अकाल मृत्यु न हो जाती तो हिन्दी कहानी-साहित्य में जाने कितने उज्ज्वल रत्न वे भर देते।

'उसने कहा था'—में हम कला की उत्तम झलक देखते हैं। गुलेरीजी की यह कहानी 'यथार्थवाद' (Realistic) श्रेणी की उत्तम कृति है। इसमें लेखक किसी आदर्श की व्यंजना नहीं करता--न कुछ उपदेश देता है। मानव-समाज का उसने एक कलापूर्ण चित्र सामने रखा है। उनकी अनुवीक्षण-शक्ति की कुशलता और प्रौढ़ता इस कहानी में प्रकट होती है। आधुनिक समालोचना-सिद्धान्तों की कसौटी पर उतारने पर हमें उसके 'आरम्भ' में कुछ अनौचित्य देख पड़ेगा। आजकल का कहानी-लेखक इस प्रकार 'निबन्ध' रूप में आरम्भ नहीं करेगा। यदि हम आरंभ का कुछ अंश निकाल दें तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु जिस युग में यह कहानी लिखी गयी थी उसमें इस प्रकार का 'बाँधनू' बाँधने का चलन था। यह कहना भी अनुचित होगा कि आरंभ व्यर्थ है--नहीं' इस प्रकार लेखक पाठकों के मन में एक विशेष प्रकार का वातावरण उपस्थित करता है। हम

उस प्रदेश के व्यक्तियों के व्यवहार से परिचित हो जाते हैं जिनमें से आगे चलकर हमारी कहानी के पात्र निकलते हैं।

'आरंभ' के बाद तो गुलेरीजी की कहानी उतनी स्वाभाविक रूप से चलती है कि जान ही नहीं पड़ता कि इसमें कहीं कोई कमी है। समस्त प्रसार मनोवैज्ञानिक आधार पर है। पाठक का ध्यान धीरे-धीरे उन वस्तुओं और घटनाओं की ओर आकृष्ट होता है जिसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। भाषा की सरलता और स्वाभाविकता ने कहानी में जान डाल दी। कथोपकथन में नाटकों की-सी यथार्थता है। यही कारण है कि पात्र हमें साक्षात् मूर्तिमान दिखाई पड़ते हैं। उनका स्वाभाविक आचरण उन्हें हमारे बीच खींच लाना है। समस्त कहानी का आधार वीरोचित प्रेम है। इस प्रेम में इच्छा नहीं, वासना नहीं, स्वार्थ नहीं—है तो केवल पुरुष के पौरुष का वह गुप्त रहस्य जो केवल प्रेम जैसी कोमल वस्तु के आघात से खुल पड़ता है। फिर तो वह जान पर खेल जाता है, पुरुषत्व की पराकाष्ठा कर दिखाता है। किसी लाभ की आशा से नहीं. किसी लोभ की लालसा से नहीं—वरन् स्वांत:सुखाय—केवल यह कल्पना कर कि एक स्त्री, एक अबला—उसके पुरुषत्व का बखान करेगी। इसी कोमल वृत्ति ने, इसी तथ्य ने पुरुष को स्त्री पर विजयी रखा—नारी यदि पराजित हुई तो पुरुषत्व के आतंक से नहीं वरन् उसके आत्म-त्याग से!

गुलेरीजी ने अपनी कहानी में chivalry का सुन्दर आदर्श खड़ा किया है। वे कुछ कहते नहीं पर घटनाओं का क्रम, पात्रों का आचरण, सारी बातें हमारे मन को उसी आदर्श की ओर ले जाती हैं। Realistic कहानी लेखक की यही आदर्शवादिता है। वह कुछ कहता नहीं—वरन् हम पर ऐसा प्रभाव डालता है कि हम स्वयं उसी परिणाम पर पहुँचते हैं जिसे वह कहना नहीं चाहता। यही कला है जो Realistic कहानी का आदर्श निश्चय करती है। केवल घटनाओं और वस्तुओं के नग्न और स्वाभाविक वर्णन को कहानी नहीं कहते। कहानी की सरसता यत्र-तत्र हास्य और विनोद के पुट से सुरक्षित रखी गई है। सरस साहित्य का उद्देश्य सात्विक मनोरंजन है—न केवल हँसाना, न केवल रुलाना।

सुदर्शन—वर्णनात्मक ढङ्ग की कहानियों के लेखकों में सुदर्शनजी का कमाल देखने योग्य होता है। आरम्भ से ही ऐसी अविरल धारा छूटती है कि पाठक फिसलता हुआ, बहता हुआ अन्त में किनारे जा लगता है। वह अपने को भूल-सा जाता है। भाषा का तो कहना ही नहीं—स्वाभाविक सरस और जोरदार। सुदर्शनजी की कहानियों में 'रहस्य' का उद्घाटन इस प्रकार होता है कि पाठकों का कुतूहल (Suspense) बना रहता है। आदर्शवाद के सिद्धान्तों को वे कभी नहीं छोड़ते। इसके अनुसार वे अपनी कथावस्तु को ऐसे घुमाते रहते हैं कि 'नाटक' का आनन्द आता है। इस संग्रह की कहानी में राजपूतनी का उच्च आदर्श दिखाते हुए उन्होंने मनुष्य के दोनों प्रकार के आसुरी और दैवी भावों का दिग्दर्शन कराया है। सुलक्षणा को हम एक स्त्री के रूप में पाते हैं जो पुरुष के गुणों पर मोहित होकर उससे प्रेम करती है—और उस पर अपना पूर्ण अधिकार पाना चाहती है। यही नहीं, उसे न पाने पर उस प्रिय वस्तु को नष्ट तक कर देना चाहती है। यह एक साधारण स्त्री की मनोवृत्ति है जो अधोगति को प्राप्त होकर अपने प्रियतम का सिर चाहती है। परन्तु यही स्त्री अपने समाज के संस्कारों के प्रभाव से सोचने लगती है—

"यह राजपूतकुल-भूषण है और धर्म पर स्थिर रहकर जाति पर न्योछावर हो रहा है। मैं भ्रष्टा होकर अपनी जाति के एक बहुमूल्य व्यक्ति के प्राण ले रही हूँ"—यह विचार उस नारी में कायापलट कर देता है। पिशाचिनी से देवी बन जाती है!

सुदर्शनजी ने भारतीय समाज को समझने की चेष्टा की है। हमारा समाज यद्यपि गिरी दशा को पहुँचा हुआ है, फिर भी पुराने संस्कार अब भी बिल्कुल मर नहीं गये। क्षणिक आघात से हमारी सोती हुई आत्मा जग सकती है। हम अपने आदर्शों पर मर मिट सकते हैं। हम निर्बल हो गये ठीक, पर हमारी आन अभी एकदम नहीं मरी। सुदर्शनजी की सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक होती हैं। इनसे प्रसुप्त भावनाएँ एकदम जग उठती हैं। इनमें दार्शनिक की व्याख्या तो है ही पर कवि का हृदय भी है।

कौशिक—कौशिकजी भी सुदर्शन ही की श्रेणी के लेखक हैं पर इनकी कहानियों में पारिवारिक जीवन के विशद चित्र मिलते हैं। उनकी शैली भी चुस्त और कथोपकथन स्वाभाविक हैं। 'विद्रोही' कहानी में हमें उनकी शैली का सुन्दर रूप मिलता है। आरम्भ कितना सुन्दर है—कहानी के भावी कथानक का आभास मिलता है। कितना चुस्त वार्तालाप है—मानो नाटक हो। कौशिकजी आवश्यकता से अधिक विस्तार करना नहीं जानते। उनके वाक्य छोटे-छोटे और चुस्त होते हैं। उनका वर्णन 'विस्तार' का दोषी नहीं होने पाता। यदि आवश्यकता हुई तो दो-एक वाक्यों में सारा काम कर दिया। जैसे—

'रणभेरी बजी। कोलाहल मचा। मुग़ल सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा। बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगी थीं।'

× × ×

'श्रावण का महीना था।'

× × ×

कौशिकजी 'अन्त' भी सुन्दर लिखते हैं। संक्षिप्त और चुभता। अन्तिम वाक्य तो कुछ देर तक पाठक के मन में गूँजते रहते हैं। जैसे—

'तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया!'

× × ×

और ज़रा सोचिए उसके बाद शीर्षक—'विद्रोह' कितना उपयुक्त है।

जैनेन्द्रकुमार—कहानी के क्रमिक विकास और पात्रों के चरित्र के विकास के चित्रण में जैनेन्द्रजी अपने क्षेत्र में अकेले हैं। उसके कारण आपकी कहानी यद्यपि मन्थर गति से चलती है, पर उसकी मस्ती में अन्तर नहीं आता। आपकी भाषा भी सरल पर कुछ शिथिल होती है। जैनेन्द्रजी की विशेषता इस बात में है कि आप मानव-मानस की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तरंगों पर ध्यान रखते हैं। अन्तर्द्वन्द्व की व्याख्या आपकी बड़ी सुन्दर होती है। आप पात्रों का आन्तरिक विश्लेषण करने में बड़े प्रवीण हैं। आपके पात्र हमारे सामने

'मनुष्य'-से, गुण-दोष भरे आते हैं पर 'मनुष्य' ही की तरह वे विवेक से काम लेते हैं, और यही उन्हें ऊपर उठाता है। आपकी कहानियाँ 'यथार्थ' श्रेणी की होती हैं। सामाजिक व्यवस्था या भारतीय वातावरण से आपका अधिक लगाव नहीं रहता। आप मनुष्य को मनुष्य और 'सविवेक पशु' मानते हुए लिखते हैं। इसी से मानवी भाव तो वे बहुत सुन्दर चित्रित करते हैं पर भारतीय वातावरण के अनुरूप कभी-कभी वे अपनी कहानी नहीं बना पाते। कला तो होती है। उसमें उपयोगिता वे नहीं मानते।

जयशंकर प्रसाद—जयशंकर प्रसाद जी कवि हैं, भावुक हैं, कलाकार हैं। जयशंकर प्रसाद जी की अपनी कुछ भावनाएँ हैं, समाज की व्यवस्था के विषय में उनके अपने सिद्धान्त हैं। आपकी कहानी भाव-प्रधान होती है। आप 'यथार्थवाद' के पक्ष में होते हुए अधिक Rational होना चाहते हैं। आपके पात्रों पर केवल विवेक का बंधन रहता है और भावों का प्राचुर्य्य। यही कारण है कि आपके पात्र सजीव होते हुए भी 'दुर्लभ' प्रतीत होते हैं। आप नाटककार हैं—आपकी कहानियों में इसी हेतु कथोपकथन की चुस्ती देख पड़ती है। आप अंतर्द्वन्द्व की व्याख्या कम करते हैं—सफल नाटककार की भाँति बातचीत में उसे बड़ी सुन्दरता से प्रकट करते हैं। कथोपकथन लिखने में तो आप एक हैं। आपकी कहानी में चुस्ती रहती है—आकर्षक 'आरंभ' तो होता ही है पर 'अंत' भी अपने ढंग का निराला होता है—बड़ा ही भावपूर्ण ध्वन्यात्मक और सहसा पढ़ने के बाद पाठक का मन झकझोर उठता है। वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है—सोचता है—'फिर क्या हुआ' 'आगे क्या हुआ—' इस प्रकार का 'अंत' कुछ आलोचक अच्छा नहीं मानते पर प्रसादजी की कहानियों में यही गुण है।

चतुरसेन शास्त्री—आधुनिक 'जर्नलिस्टिक' (Journalistic) टाइप के कहानी-लेखकों में चतुरसेन शास्त्री की लेखनी सचमुच लौह-लेखनी है। आपकी कहानियों में प्रौढ़ता है, जोश है, चोट है, प्रवाह है, रोचकता और हृदय को लुभानेवाली शक्ति है। आपकी भाषा बड़ी ही मुहावरेदार और ओजस्विनी होती है। आप कहना जानते हैं—यही आपकी

कला है। कहानी आरम्भ कर हम बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकते। यह दूसरी बात है कि उसका स्थायी प्रभाव मन पर न पड़े। पर पढ़ते समय हम उसे पढ़ने में तन्मय हो जाते हैं। आपका वर्णन विशद, सजीव और स्वाभाविक होता है। आप एक 'समाँ' खड़ा कर देते हैं। सारा वातावरण तदात्मक हो जाता है। आपकी कहानी में शराब की-सी मादकता होती है, मज़ा आता है! आपकी कहानियों में 'घटना' प्रधान होती है, इसमें dramatic touch रहता है। कहानियों की रवानी दरिया की भाँति उमड़ती चलती है। 'पानवाली' कहानी आपकी शैली की प्रतिनिधि है।

राय कृष्णदास—राय कृष्णदास कवि हैं, कला-मर्मज्ञ हैं और भावुक व्यक्ति हैं। आपकी कहानियों में दार्शनिक विचारों का होना स्वाभाविक है। आपकी कहानियों की शैली आजकल की 'परख' की कसौटी पर उतारने पर खटकेगी। प्रस्तुत कहानी 'सम्राट का स्वत्व' में पूरे दो पृष्ठ का 'आत्मभाषण' आजकल कोई न लिखेगा। परन्तु अपने स्थान पर यह बुरा नहीं। भावों का अन्तर्द्वन्द्व उससे बढ़कर सुन्दर रीति से प्रकट नहीं किया जा सकता। आपकी कहानियों में 'निबन्ध' का रंग दिखायी पड़ता है। आपकी भाषा भी कवित्वमय होती है। बीच-बीच में आलंकारिक उक्तियों आदि से उसकी शोभा और बढ़ जाती है। आपकी भाषा काशी के साहित्यिकों की 'हिन्दी' है जिसे लोग 'तत्समवादी' कहते हैं। घटनाओं की प्रधानता न होकर आपकी कहानियों में भावों की प्रधानता रहती है। जयशंकर प्रसादजी की शैली से आपकी शैली का बन्धुत्व नजर आता है।

प्रेमचन्द—भारतीय हृदय को, विशेषकर भारतीयों की बहु संख्या—ग्रामीणों के हृदय को जितना प्रेमचंद ने समझा है, उतना हिन्दी में किसी ने भी नहीं—यह निर्विवाद सिद्ध है। बाबू श्यामसुन्दरदास लिखते हैं—'प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनकी भाषा-शैली कहानियों के बहुत उपयुक्त हुई है और उनके विचार भी सब पढ़े-लिखे लोगों के विचार से मिलते-जुलते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद की कहानियाँ सब से अधिक लोकप्रिय हैं।' पंडित गणेश-

प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'ये (प्रेमचंद) चरित्र-चित्रण में अपना सानी नहीं रखते—इनमें मुख्य बात यह है कि ये महाशय कहानी या उपन्यास जो कुछ भी लिखते हैं वह सोद्देश्य रूप से । उनकी हर एक कहानी में जन-समाज के लिए कोई न कोई उपदेशात्मक संदेश रहता है । सामाजिक अथवा नैतिक कुरीतियों का निवारण आपका लक्ष्य रहता है । पर आपका कथन कभी उग्र नहीं होता, बल्कि जो कुछ आप कहते हैं इस प्रकार की मीठी व्यंगपूर्ण भाषा में कहते हैं कि पाठक को कटुता का अनुभव कदापि नहीं होता. बस इसी में प्रेमचन्दजी का कौशल है । इनके अधिकार में एक बड़ी ही सरल तथा चुस्त भाषा-शैली आ गयी है। इसका एक कारण शायद यह भी है कि आप उर्दू के बड़े अच्छे लेखक हैं । एक और मुख्य बात इनकी लेखनकला के विषय में यह है कि ये मनुष्य-जीवन की साधारण घटना को लेकर उसका निष्कर्ष निकालते समय मनुष्य-हृदय के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों को मनोविज्ञान के नियमों के ढङ्ग पर ऐसा सजाकर धर देते हैं कि देखते ही बनता है ।'

प्रेमचन्द आदर्शवादी हैं । आपकी कहानियाँ किसी-न-किसी आदर्श की ओर संकेत करती हैं । आप मानव-जीवन के उच्च आदर्श के हिमायती हैं । भारतीय संस्कृति के मुरझाये हुए प्रभाव को जाग्रत् करने में आपकी कहानियाँ काफी सहायता देती हैं । मनुष्य को ऊपर उठाना, उसे सम्पूर्ण मनुष्य बनाना, इतना ही नहीं उसे चारों ओर अन्धकार से बचाकर ज्ञान, त्याग और महान् आदर्शों का मार्ग दिखाना आपका लक्ष्य रहता है। उसमें आप संपूर्ण रूप में सफल हुए हैं—भारतीय हृदय को आपकी कहानियाँ जितनी जँचती हैं, उतनी अन्य किसी की नहीं ।

श्रीभारतीय—नवीन लेखकों में श्रीभारतीय का नाम सबसे प्रथम लिया जा सकता है । थोड़े ही दिनों से आपने कहानी लिखना आरम्भ किया और थोड़े ही समय में उच्च कोटि की कहानियों की रचना आपने कर दिखायी । आप हिन्दी के विद्वान् हैं । संस्कृत-साहित्य के ज्ञाता हैं । भाषा पर आपका अधिकार है । प्राचीन तथा नवीन साहित्य के आदर्शों के आप ज्ञाता हैं । आपका अध्ययन, चिंतन दोनों विस्तृत और गम्भीर है । यही कारण है

कि कहानी क्षेत्र में उतरते ही दो ही चार हाथ मारने पर आप पारंगत प्रतीत होते हैं। आपकी रचना-शैली की प्रौढ़ता और कलात्मक-वृत्ति का चमत्कार आपकी 'मुनमुन' कहानी में अच्छा मिलता है। यह आपकी सहृदयता का परिचायक है कि एक बकरी के बच्चे में आपने इतनी जान भर दी कि वह मनुष्य-सा आचरण करता है। आपकी अन्वीक्षण-शक्ति और वर्णन-शैली का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। आप भी प्रेमचन्द की भाँति साहित्य को 'निरुद्देश्य' नहीं मानते। आप साहित्य को मनुष्य के उत्थान का साधन मानते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से साहित्य की सृष्टि करने के हेतु ही मानों आपने 'भारतीय' उपनाम अंगीकार किया है।

भारतीय जी की कहानियों में सजीवता और स्वाभाविकता के साथ-साथ जीवन का उनका अपना दृष्टिकोण स्थल-स्थल पर व्यंग रूप से प्रकट होता है। आप Rationalist हैं परन्तु साथ-ही-साथ भारतीय संस्कृति के परम भक्त भी हैं। आप अंधभक्ति को मूर्खता और अज्ञान का परिणाम समझते हैं। आपके सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य की सभ्यता की पराकाष्ठा सहृदयता में है, दूसरों को सहानुभूति-पूर्वक समझने में है—चाहे वह मनुष्य हो, चाहे पशु हो, चर हो या अचर हो। इसी कारण 'मुनमुन' में आपने कई स्थल पर चोट की है—कहीं ईश्वर पर, कहीं समाज पर, कहीं मनुष्य की विवेक शक्ति पर। स्थल स्थल पर जैसे उनकी इच्छा प्रकट करने की हो—'मनुष्य प्रथम अपनी ओर देख! Know thyself!'

आपकी कहानियों का आधार Realistic पद्धति है। पर आप समाज के नियमों व मनुष्य की वर्तमान अनुभूतियों के विरुद्ध आचरण करने का साहस नहीं करना चाहते। हाँ, अंतर्द्वन्द्व रूप में आप यह अवश्य प्रकट कर देते हैं कि हम सामाजिक प्राणी हैं—विवश हैं—पर हमारी आत्मा मरी नहीं, समझती है, चैतन्य है; पर वह विद्रोह करने पर तैयार नहीं। आपका लक्ष्य मनुष्य की आत्मा को जीवित रखना है, उसे समाज और संस्कार के प्रभावों से अप्रभावित रखना है। पर मनुष्य रहते वह विद्रोह नहीं कर सकती, करके फिर जीवित नहीं रह सकती। इसी हेतु आप विद्रोही आचरणों के प्रति झुकते नहीं। आप 'व्यक्तिवादी' नहीं वरन् 'समाजवादी' हैं। 'मुनमुन'

के अंग में आपके सिद्धान्त इस वाक्य से ध्वनित होते हैं—

'एक ने मानों मानव-समाज की हृदयहीनता का आजीवन अनुभव कर दार्शनिक की उदासीनता प्राप्त की थी—दूसरा, मानव-जाति की सभ्यता की वेदी के सोपान की ओर घसीटे जाने पर बकरी के बच्चे की भाँति छटपटा रहा था !'

मनुष्य की सभ्यता का खोखलापन कितनी सुन्दरता से ध्वनित होता है—पर उसके प्रति विद्रोह की व्यंजना नहीं—दार्शनिक का उदासीनता की ओर लक्ष्य है । जो है वह रहेगा—रहे, पर उसकी निस्सारता समझना चाहिए । आत्मज्ञान को सचेत रखना—यही भारतीयजी का मानो सन्देश है ।

वीरेश्वरसिंह—श्रीवीरेश्वरसिंहजी की कुछ कहानियाँ पत्रिकाओं में छपी हैं । उन्हें अभी पुस्तकाकार छपने का अवसर नहीं मिला, पर इन कहानियों को देखकर एक उदीयमान लेखक का परिचय मिलता है । आपकी भाषा में प्रवाह है, प्रौढ़ता है पर यत्र-तत्र संयम की कमज़ोरी दीख पड़ जाती है । यह बहुत दिनों तक रुकनेवाली नहीं । आपमें कहानी की अनुभूति है, कहने की प्रतिभा है । आपकी भाषा में कहीं-कहीं कवित्व दिखाई पड़ जाता है । 'परिवर्तन' नामक कहानी में आपकी सहृदयता और अन्वीक्षण-शक्ति का आभास मिलता है । आप अन्तर्द्वन्द्व दिखाने की चेष्टा करते हैं और तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । आपकी वर्णन शैली ध्वन्यात्मक होती है । संक्षेप में, चुटीली भाषा में अधिक भाव प्रकट करने की आप चेष्टा करते हैं। प्रस्तुत कहानी में 'रामू' के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को दिखाकर आपने 'परिवर्तन' शीर्षक की सार्थकता प्रमाणित कर दी है ।

भुवनेश्वरप्रसाद—भुवनेश्वरप्रसाद की रचनाओं में कला का आभास है—यद्यपि उन पर पाश्चात्य प्रभाव छिपे नहीं रह सके हैं । आपकी शैली जैनेन्द्रजी की शैली के रास्ते पर चलती नज़र आती है पर जैनेन्द्रजी की भाषा की शिथिलता इसमें अनुपस्थित है । भुवनेश्वरप्रसाद मानव-प्रकृति के विश्लेषण की ओर अधिक ध्यान देते हैं । इनकी कहानियाँ भाव-प्रधान हैं । बीच-बीच में घटनाएँ तो केवल आधार-मात्र ही होती हैं । इनकी

कहानी में घटना कम, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन अधिक होता है। 'मौसी' नामक कहानी में इनकी शैली का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ता है। ये कुछ ही कहते हैं, बहुत कुछ छोड़ जाते हैं—उनका न कहना अधिक वाचाल है। वियोगान्त या दुःखान्त कथावस्तु की ओर इनका अधिक झुकाव है। इनकी कहानियों के पात्र सजीव पर भावुक व्यक्ति जान पड़ते हैं। कथोपकथन तो इनके बहुत संक्षिप्त और मार्मिक होते हैं। बात यह है कि आप नाटककार भी हैं। इनकी दार्शनिकता किसी निश्चित सिद्धान्त की ओर लक्ष्य न कर केवल अपनी उधेड़बुन में उलझ जाती है। इनकी शैली में चोट है, ओज है और है आधुनिक कला की छाया। भविष्य में आशा है इनकी लेखनी और विचार-शैली प्रौढ़ होकर साहित्य की अच्छी सेवा कर सकेगी।

सद्गुरुशरण अवस्थी—अवस्थीजी साहित्य के आलोचक हैं, शिक्षक हैं, स्वाध्यायी हैं। अभी हाल ही में आपकी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है। उसमें 'फूटा शीशा' नामक एक शीर्षक पर दस कहानियाँ हैं। इनको पढ़कर अवस्थीजी की वर्णन-शक्ति, विचार-शक्ति और विश्लेषण-शक्ति का क़ायल होना पड़ता है। वे जैसे साहित्य के आलोचक हैं, वैसे जीवन के भी आलोचक हैं। इनकी कहानियों में सब से सुन्दर वे स्थल हैं जहाँ ये अपने पात्रों के अन्तर्जगत् में प्रवेश करते हैं। वे कहीं अपने पात्र से पराभूत नहीं होते, कहीं आवेश में नहीं आते। उनकी दार्शनिकता सदैव उनकी कल्पना पर अंकुश लगाये रहती है। उनकी दृष्टि यथार्थ पर रहती है। आदर्शों के मोह में नहीं पड़ती। इनमें रसों का विकास और भावों की व्यञ्जना उतनी नहीं है जितनी जीवन-तत्त्वों पर पहुँचने की प्रेरणा। उनकी सृजनशक्ति एकांगी नहीं। प्रस्तुत संग्रह की कहानी 'फूटा शीशा' में प्रेम-स्मृति का बड़ा रोमांचकारी चित्रण दिखाई पड़ेगा। इसमें नगरों की काल-कोठरियों में बसनेवालों के एक कारुणिक दृश्य का भी साक्षात् होता है। अवस्थीजी की भाषा में उक्ति-वैचित्र्य है, कहने का तर्ज़ है, साहित्यिकपन है। कहीं-कहीं हास्य तथा व्यंग की हलकी तरंग भी दिखाई पड़ जाती है।

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(सन् १८८३—१९११)

[आपका जन्म काँगड़ा प्रान्त के गुलेर नामक गाँव में हुआ। आप संस्कृत, प्राकृत और अंग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् थे। भाषा-शास्त्र पर आपका ख़ास अधिकार था। आप हिन्दू-विश्वविद्यालय में प्राच्य शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष थे। आप जयपुर के 'समालोचक' और 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' के सम्पादक भी थे। आपकी कहानियों में आपकी अद्भुत प्रतिभा, अपूर्व कल्पना-शक्ति, वर्णन-चातुरी और अनूठी भाषा का परिचय मिलता है।

ऐसे विद्वान की स्वर्ग में भी आवश्यकता हुई। २८ वर्ष की अल्पायु में ही आप स्वर्ग सिधार गये।]

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जवान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के वम्बूकाटवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़ों की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले, तङ्ग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्रका समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी', 'हटो भाईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने, खोमचे और भारेवालों के जङ्गल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने

पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिये; हट जा करमा वालिये; हट जा, पुत्ताँ प्यारिये; बच जा, लम्भी वालिये। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों-वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? बच जा।

ऐसे वम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की दूकान पर आ मिले। उनके बालों और उसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने विना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं ?'

'मगरे में;—और तेरे ?'

'माझे में,—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह के बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में है।'

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—तेरी कुड़माई हो गई ? इस पर लड़की कुछ आँख चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई है ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—हाँ, हो गई।

'कब ?'

'कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा

और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

(२)

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खन्दकों में बैठे-बैठे हड्डियाँ जकड़ गईं। लुधियाने से दस-गुना जाड़ा और मेह और बरफ़ ऊपर से। पिण्डलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ग़नीम कहीं दिखता नहीं—घण्टे-दो-घण्टे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक़ हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस ग़ैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक़ से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए वा पास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक़ में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ़' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेटभर खाकर सो रहेंगे। उसी फ़िरङ्गी मेम के बाग़ में, मख़मल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती; कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी, बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो सङ्गीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—सङ्गीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते, क्यों?' सूबेदार हज़ारासिंह ने मुसकराकर कहा—लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गये तो क्या होगा?

'सूबेदारजी, सच है'—लहनासिंह बोला—'पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय।' 'उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वज़ीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक़ में चक्कर लगाने लगा।

वज़ीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण ! इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—अपनी बाड़ी के ख़रबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पञ्जाब भर में नहीं मिलेगा।

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा ज़मीन माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा !'

'लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फरङ्गी मेम—'

'चुप कर। यहाँवालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं ?'

'अच्छा अब बोधासिंह कैसा है ?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रातभर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो। आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख़्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े

रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—क्या मरने-मारने की बात लगाई है?

इतने में एक कोने से पंजाबी गीत की आवाज सुनाई दी। सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये; मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात हो गई है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक ब्रानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मैंख पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधासिंह भाई क्या है?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—कहो कैसे हो?

पानी पीकर बोधा बोला—कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें!' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ ?' यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—सूबेदार हज़ारासिंह !

'कौन ? लपटन साहब ? हुकुम हुजूर !' कहकर सूबेदार तनकर फ़ौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक़ छीनकर वहीं जब तक दूसरा हुक्म न मिले डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—लो, तुम भी पियो।

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—लाओ, साहब। हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह क़ैदियों के-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौक़ा मिल

गया हो ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उनकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे ?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नक़ली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधारी के जिले में शिकार करने गये थे—'हाँ, हाँ'—वहीं, जब आप खोते (गधे) पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ? 'बेशक, पाजी कहीं का'—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायेंगे। 'हां, पर हमने वह विलायत भेज दिया।' 'ऐसे बड़े-बड़े सींग। दो-दो फुट के तो होंगे ?'

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे, तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ।' कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वज़ीरासिंह ?'

'हाँ, क्यों लहना ? क्या क़यामत आ गई ? ज़रा तो आँख लगने दी होती ?'

(४)

'होश में आओ। क़यामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गये हैं या क़ैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा।

मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहरा (ससुरा) साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब ?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होराँ कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं—'

'ऐसी-तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को तीन जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ऑख! मीन गोट्ट' (हाय! मेरे राम) कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीन गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास हटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—क्यों लपटन साहब, मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधारी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं, पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—चालाक तो बड़े हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने का तावीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा (खटिया) बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गौ-हत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपए निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हेनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—क्या है !

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था, वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे

अचानक आवाज आई 'वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फ़ायर जर्मनी की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया। एक किलकारी और—'अकाल सिक्खों की फौज आई! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरुष!!!' और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। और किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरंत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच

जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाडी मे घायल लिटाये गये और दूसरी मे लाशे रखी गई। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ मे पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोडा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर मे बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोडकर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हे बोधा की कसम है और सूबेदारनीजो की सौगन्ध है, जो इस गाडी मे न चले जाओ।

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाडी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मै खड़ा हूँ। वजीरासिंह मेरे पास ही है।'

'अच्छा, पर—'

'बोधा गाडी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ आओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।'

गाडियाँ चल पडी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढते लहना का हाथ पकडकर कहा—'तैने मेरे और लहना के प्राण बचाये है। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना।'

गाडी के जाते ही लहना लेट गया—वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती है। सारे दृश्यो के रङ्ग साफ होते है। समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर मे मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की

लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई है ? तब 'धत' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—हाँ कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू ? सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

'वजीरासिंह पानी पिला दे।'

× × × ×

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेण्ट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारा-सिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार 'बेड़े' (जनाने) में से निकलकर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेण्ट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा, असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई।—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है, सूबेदारनी कह रही है—मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी

का खिताब दिया है लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों (स्त्रियों) की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी (अन्दर का घर) में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

वजीरासिंह, पानी पिला'—'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—'कौन ? कीरतसिंह ?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट (जाँघ) पर मेरा सिर रख ले।'

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस अब के हाड़ (आषाढ़) में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

प्रश्नावली—

१ लहनासिंह के चरित्र से उसके निम्नलिखित गुणों को प्रमाणित कीजिए:— प्रेम, बलिदान, वीरता, सतर्कता, वचन-वीरता।

२ लहनासिंह ने सूबेदारनी के आदेश का पालन इतने आत्मत्याग से क्यों किया?

३. लहनासिंह को कैसे मालूम हुआ कि लपटन साहब उसका असली अफसर नहीं, बल्कि जर्मन जासूस ने लपटन का भेस रख लिया है?

४. प्रसंग के साथ इन अवतरणों का अर्थ लिखिए —

(क) आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया।

(ख) होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।

(ग) ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच आ गये।

(घ) हाँ याद आई, मेरे पास दूसरी गरम जरसी है, आज सबेरे ही आई है।

५. मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट आती है। क्या यह कथन सत्य है? प्रमाण दो।

६ (अ) इस गल्प में तुम्हें इस बात का कोई पता चलता है कि लहनासिंह की शादी हुई या नहीं?

(ब) लहनासिंह को अपनी मृत्यु के विषय में क्या लालसा थी? वह कैसे पूरी हुई?

निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखो :—

जीणे जोगिए, कुड़माई, गनीम, गैबी गोला, कपालक्रिया।

राजपूतनी का प्रायश्चित्त

'श्री सुदर्शन'

(सन १८९६)

[आपका जन्मस्थान स्यालकोट का है। आपका वास्तविक नाम पडित बद्रीनाथ है। आपने उर्दू में अधिक रचनाए की हैं। पर हिन्दी में भी आपके कई नाटक, गल्पसग्रह प्रकाशित हुए हैं। कहानी लेखकों में आप अग्रगण्य माने जाते हैं। आपकी भाषा सरल, मनोरजक होती है। आप वर्णन करने में वर्ण्य विषय की प्रतिमूर्त्ति खड़ी कर देते हैं। आपकी कहानियों का विषय सामाजिक समस्या होती है।]

(१)

कुँवर वीरमदेव कलानौर के राजा हरदेवसिंह के पुत्र थे, तलवार के धनी और पूरे रणधीर। प्रजा उन पर प्राण देती थी, और पिता देख-देखकर फूला न समाता था। वीरमदेव ज्यों-ज्यों प्रजा की दृष्टि में सर्वप्रिय होते जाते थे, उनके सद्गुण बढ़ते जाते थे। प्रातःकाल उठकर स्नान करना, निर्धनों को दान देना, यह उनका नित्यकर्म था, जिसमें कभी चूक नहीं होती थी। वे मुस्कराकर बातें करते थे, और चलते-चलते बाट में कोई स्त्री मिल जाती, तो नेत्र नीचे करके चले जाते। उनका विवाह नरपुर के राजा की पुत्री राजवती से हुआ था। राजवती केवल देखने में ही रूपवती न थी, वरन् शील और गुणों में भी अनुपम थी। जिस प्रकार वीरमदेव पर पुरुष मुग्ध थे, उसी प्रकार राजवती पर स्त्रियाँ लट्टू थीं। कलानौर की प्रजा उनको 'चन्द्र-सूर्य की जोड़ी' कहा करती थी।

वर्षा के दिन थे, भूमि के चप्पे-चप्पे पर से सुन्दरता निछावर हो रही थी। वृक्ष हरे-भरे थे, नदी-नाले उमड़े हुए थे। वीरमदेव सफलगढ़ पर विजय प्राप्त करके प्रफुल्लित मन से वापस आ रहे थे। सम्राट् अलाउद्दीन ने उनके स्वागत के लिए बड़े समारोह से तैयारियाँ की थीं। नगर के

बाजार सजे हुए थे। छज्जों पर स्त्रियाँ थीं। दर्बार के अमीर अगवानी को उपस्थित थे। वीरमदेव उत्फुल्ल बदन से सलामें लेते और दर्बारियों से हाथ मिलाते हुए दर्बार में पहुँचे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल और विजयी चाल-ढाल देखकर अलाउद्दीन का हृदय दहल गया, परन्तु वह प्रकट हँसकर बोला—वीरमदेव! तुम्हारी वीरता ने हमारे मन में घर कर लिया है। इस विजय पर तुमको बधाई है।

वीरमदेव को इससे प्रसन्नता नहीं हुई। हन्त! यह बात किसी सजातीय के मुख से निकलती! वह बधाई किसी राजपूत की ओर से होती, तो कैसा आनन्द होता! विचार आया, मैंने क्या किया? वीरता से विजय प्राप्त की, परन्तु दूसरे के लिए। युद्ध में विजयी, परन्तु सिर झुकाने के लिए। इस विचार से मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। परन्तु आँख ऊँची की तो दर्बारी उनकी ओर ईर्ष्या से देख रहे थे। और आदर-पुरस्कार पाँवों में बिछ रहा था। वीरमदेव ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हुजूर का अनुग्रह है, मैं तो एक निर्बल व्यक्ति हूँ।

बादशाह ने कहा 'नहीं तुमने वास्तव में वीरता का काम किया है। हम तुम्हें जागीर देना चाहते हैं।'

वीरमदेव ने कहा 'मेरी एक प्रार्थना है।'

'कहो।'

'कैदियों में एक नवयुवक राजपूत जीतसिंह है, जो पठानों की ओर से हमारे साथ लड़ा था। वह है तो शत्रु, परन्तु अत्यन्त वीर है। मैं उसे अपने पास रखना चाहता हूँ।'

अलाउद्दीन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—मामूली बात है, वह कैदी हमने तुम्हें बख्शा।

(२)

दो वर्ष के पश्चात् वीरमदेव कलानौर को वापस लौटे, तो मन उमङ्गों से भरा हुआ था। राजवती की भेंट के हर्ष में पिछले दुःख सब भूल गये। तेज चलनेवाले पक्षी की नाईं उमङ्गों के आकाश में उड़े चले जाते थे। मातृभूमि के पुनर्दर्शन होंगे। जिस मिट्टी से शरीर बना है, वह फिर आँखों के

सम्मुख होगी। मित्र-बन्धु स्वागत करेंगे, बधाइयाँ देंगे। उनके शब्द जिह्वा से नहीं, हृदय से निकलेंगे। पिता प्रसन्न होंगे, स्त्री द्वार पर खड़ी होगी।'

ज्यों-ज्यों कलानौर निकट आ रहा था, हृदय की आग भड़क रही थी। स्वदेश का प्रेम हृदय पर जादू का प्रभाव डाल रहा था। मानो पाँवों को मिट्टी की जञ्जीर खींच रही थी। एक पड़ाव शेष था कि वीरमदेव ने जीतसिंह से हँसकर कहा 'आज हमारी स्त्री बहुत व्याकुल हो रही होगी।'

जीतसिंह ने सुना, तो चौंक पड़ा और आश्चर्य से बोला—आप विवाहित हैं क्या?

वीरमदेव ने बेपर्वाही से उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे विवाह को पाँच वर्ष हो गये।'

जीतसिंह का चेहरा लाल हो गया। कुछ क्षणों तक वह चुप रहा, परन्तु फिर न सह सका, क्रोध से चिल्लाकर बोला—बड़े हृदयशून्य हो, तुम्हें ऐसा न समझता था।

वीरमदेव कल्पना के जगत में सुख के महल बना रहे थे। यह सुनकर उनका स्वप्न टूट गया। घबराकर बोले—जीतसिंह, यह क्या कहते हो?

जीतसिंह अकड़कर खड़ा हो गया और तनकर बोला—समरभूमि में तुमने पराजय दी है, परन्तु वचन निबाहने में तुम मुझसे बहुत पीछे हो।

'बाल्यावस्था में मेरी-तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय में वैसी-की-वैसी बनी हुई है, परन्तु तुमने अपने पतित हृदय की तृप्ति के लिए नया बाग और नया पुष्प चुन लिया है। अब से पहले मैं समझता था कि मैं तुमसे पराजित हुआ, परन्तु अब मेरा सिर ऊँचा है। क्योंकि तुम मुझसे कई गुना अधिक नीचे हो। पराजय लज्जा है, परन्तु प्रेम की प्रतिज्ञा को पूरा न करना पतन का कारण है।'

वीरमदेव यह वक्तृता सुनकर सन्नाटे में आ गये और आश्चर्य से बोले, 'तुम कौन हो? मैंने तुमको अभी तक नहीं पहचाना।'

'मैं मैं सुलक्षणा हूँ।'

वीरमदेव के नेत्रों से पर्दा हट गया, और उनको वह अतीत काल स्मरण हुआ, जब वे दिन-रात सुलक्षणा के साथ खेलते रहा करते थे। इकट्ठे फूल

चुनते, इकट्ठे मन्दिर मे जाते और इकट्ठे पूजा करते थे। चन्द्रदेव की शुभ ज्योत्स्ना मे वे एक स्वर से मधुर गीत गाया करते थे और प्रेम की प्रतिज्ञाएँ किया करते थे। परन्तु अब वे दिन बीत चुके थे, सुलक्षणा और वीरमदेव के मध्य मे एक विशाल नदी का पाट था।

सुलक्षणा ने कहा, 'वीरमदेव ! प्रेम के पश्चात् दूसरा दर्जा प्रतिकार का है। तुम प्रेम का अमृत पी चुके हो, अब प्रतिकार के विषपान के लिए अपने होठो को तैय्यार करो।'

वीरमदेव उत्तर मे कुछ कहा चाहते थे कि सुलक्षणा क्रोध से होठ चबाती हुई खेमे से बाहर निकल गई, और वीरमदेव चुपचाप बैठे रह गये।

दूसरे दिन कलानौर के दुर्ग से घनगर्ज शब्द ने नगरवासियो को सूचना दी, वीरमदेव आते हैं। स्वागत के लिए तैय्यारियाँ करो।

हरदेवसिंह ने पुत्र का मस्तक चूमा। राजवती आरती का थाल लेकर द्वार पर आई कि वीरमदेव ने वीरता से झूमते हुए दरवाजे मे प्रवेश किया। परन्तु अभी आरती न उतारने पाई थी कि एक बिल्ली टाँगो के नीचे से निकल गई, और थाल भूमि पर आ रहा। राजवती का हृदय धड़क गया, और वीरमदेव को पूर्व घटना याद आ गई।

(३)

अभी सफलगढ़ की विजय पुरानी न हुई थी, अभी वीरमदेव की वीरता की साख लोगो को भूलने न पायी थी कि कलानौर को अलाउद्दीन के सिपाहियो ने घेर लिया। लोग चकित थे, परन्तु वीरमदेव जानते थे कि यह आग सुलक्षणा की लगाई हुई है।

कलानौर यद्यपि साधारण दुर्ग था, परन्तु इससे वीरमदेव ने मन नहीं हार दिया। सफलगढ की नूतन विजय से उनके साहस बढ़े हुए थे। अलाउद्दीन पर उनका असीम क्रोध था। मैने उसकी कितनी सेवा की, इतनी दूर की कठिन यात्रा करके पठानो से दुर्ग छीनकर दिया, अपने प्राणो के समान प्यारे राजपूतो का रक्त पानी की तरह बहा दिया और उसके बदले मे, जागीरो के स्थान मे, यह अपमान प्राप्त हुआ है।

परन्तु राजवती को सफलगढ़ की विजय और वीरमदेव के आगमन से

इतनी प्रसन्नता न हुई थी, जितनी आज हुई। आज उसके नेत्रो मे आनन्द की झलक थी और चेहरे पर अभिमान तथा गौरव का रग। वीरमदेव भूले हुए थे, अलाउद्दीन ने उन्हे शिक्षा देनी चाही है। पराधीनता की विजय से स्वाधीनता की पराजय सहस्र गुना अच्छी है। पहले उसे ग्लानियुक्त प्रसन्नता थी—अब हर्षयुत भय। पहले उसका मन रोता था, परन्तु आँखे छिपाती थीं। आज उसका हृदय हँसता था और आँखे मुस्कराती थीं। वह इठलाती हुई पति के सम्मुख गई और बोली—'क्या सकल्प है ?'

वीरमदेव जोश और क्रोध से दीवाने हो रहे थे, झल्लाकर बोले—'मै अलाउद्दीन के दॉत खट्टे कर दूँगा।'

राजवती ने कहा—'जीवननाथ! आज मेरे उजडे हुए हृदय मे आनन्द की नदी उमडी हुई है।'

'क्यो ?'

'क्योकि आज आप स्वाधीन राजपूतो की नाईं बोल रहे है। आज आप वे नहीं है, जो पन्द्रह दिन पहले थे। उस समय और आज मे महान अन्तर हो गया है। उस दिन आप पराधीन वेतन-ग्राही थे, आज एक स्वाधीन सिपाही है। उस दिन आप शाही प्रसन्नता के अभिलाषी थे, आज उसके समान स्वाधीन है। उस दिन आपको सुख-सम्पत्ति की आकाक्षा थी, आज आन की धुन है। उस समय आप नीचे जा रहे थे, आज आप ऊपर उठ रहे है।'

राजवती के यह गौरव भरे शब्द सुनकर वीरमदेव उछल पड़े, और राजवती को गले लगाकर बोले—'राजवती! तुमने मेरे मन मे बिजली भर दी है। तुम्हारे यह शब्द रण-क्षेत्र मे मेरे मन को उत्साह दिलाते हुए मुझे लड़ायेगे। दुर्ग तुम्हारे अर्पण है।'

दुन्दुभि पर चोट पड़ी, राजपूतो के दिल खिल गये। माताओ ने पुत्रो को हँसते हुए विदा किया। बहनो ने भाइयो को तलवारे बाँधी। स्त्रियाँ स्वामियो से हँस-हँसकर गले मिली, परन्तु मन मे उद्विग्नता भरी हुई थी। कौन जाने, फिर मिलाप हो या न हो।

दुर्ग के कुछ अन्तर नदी बहती थी। राजपूत उसके तट पर डट गये।

सेनापति की सम्मति थी कि हमको नदी के इस पार रहकर शाही सेना को पार होने से रोकना चाहिए, परन्तु वीरमदेव जोश में पागल हो रहे थे उन्होंने कहा, 'हम नदी के उस पार शाही सेना से युद्ध करेंगे और सिद्ध कर देंगे कि राजपूतों का बाहुबल शाही सेना की शक्ति से कहीं अधिक है।'

राजपूतों ने महादेव की जय के जयकारे बुलाते हुए नदी को पार किया, और वे शाही सेना से जुट गये।

राजपूत शाही सेना की अपेक्षा थोड़े थे, परन्तु उनके साहस बढे हुए थे, और राजपूत बराबर आगे बढ़ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो शाही सेना पर राजपूतों की निर्भीकता और वीरता ने जादू कर दिया है। परन्तु यह अवस्था अधिक समय तक स्थिर न रही। शाही सेना राजपूतों की अपेक्षा कई गुना अधिक थी, इसलिए सध्या होते-होते पासा पलट गया। राजपूतों को नदी के इस पार आना पड़ा।

इससे वीरमदेव को बहुत आघात पहुँचा। उन्होंने रात को एक ओजस्विनी वक्तृता दी, और राजपूतों के पूर्वजों के साखे सुना-सुनाकर उनको उत्तेजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों ने क्रुद्ध सिंहों के समान तैरकर दूसरे दिन नदी पार करने की प्रतिज्ञा की, परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है, परमात्मा की कुछ और इच्छा होती है। इधर यह विचार हो रहे थे, उधर मुसलमान भी सोये न थे। उन्होंने कलमा पढ़कर कसमें खाईं कि मरते-मरते मर जायेंगे, परन्तु पीठ न दिखायेंगे। मुट्ठी भर राजपूतों से हारना सख्त कायरता है। लोग क्या कहेंगे? यह 'लोग क्या कहेंगे' का भय लोगों से बहुत कुछ करवा देता है।

(४)

प्रातःकाल हुआ तो लड़ाके वीर फिर आमने-सामने हुए और लोहे से लोहा बजने लगा। वीरमदेव की तलवार गजब ढा रही थी। वे जिधर झुकते थे, परे के परे साफ़ कर देते थे। उनकी रणदक्षता से राजपूत सेना प्रसन्न हो रही थी, परन्तु मुसलमानों के हृदय बैठे जाते थे। यह मनुष्य है या देव, जो न मृत्यु से भय खाता है, न घावों से भय खाता है, न घावों से पीड़ित होता है। जिधर झुकता है, विजय-लक्ष्मी फूलों की वर्षा करती है। जिधर जाता

है, सफलता साथ जाती है। इससे युद्ध करना लोहे के चने चबाना है। शाही सेना नदी के दूसरे पार चली गई।

वीरमदेव ने राजपूतों के बढ़े हुए साहस देखे, तो गद्गद् हो गये, सिपाहियों से कहा, मेरे पीछे-पीछे आ जाओ, और आप घोड़ा नदी में डाल दिया. इस साहस और वीरता पर मुसलमान आश्चर्यचकित हो रहे, परन्तु अभी उनका विस्मय कम न हुआ था कि राजपूत किनारे पर आ गये, और तुमुल संग्राम आरम्भ हो गया। मुसलमान सेना लड़ती थी रोटी के लिए, उसके पैर उखड़ गये। राजपूत लड़ते थे मातृभूमि के लिए, विजयी हुए। शाही सेना में भगदड़ मच गई, सिपाही समर-भूमि छोड़ने लगे। वीरमदेव के सिपाहियों ने पीछा करना चाहा, परन्तु वीरमदेव ने रोक दिया। भागते शत्रु पर आक्रमण करना वीरता नहीं पाप है। और जो यह नीच कर्म करेगा, मैं उसका मुँह देखना पसन्द न करूँगा।

विजयी सेना कलानौर में प्रविष्ट हुई। स्त्रियों ने उन पर पुष्प बरसाये, लोगों ने रात को दीपमाला की। राजवती ने मुस्कराती हुई आँखों से वीरमदेव का स्वागत किया और उनके कंठ में विजयमाला डाली। वीरमदेव ने राजवती को गले लगा लिया और कहा—मुझे तुझ पर मान है, तू राजपूतनियों में सिरमौर है।

(५)

इस पराजय ने अलाउद्दीन के हृदय की भड़कती हुए अग्नि पर तेल का काम किया। उसने चारों ओर से सेना एकत्रित की और चालीस हजार मनुष्यों से कलानौर को घेर लिया। वीरमदेव अब मैदान में निकलकर लड़ना नीतिविरुद्ध समझ दुर्ग में दुबक रहे।

दुर्ग बहुत दृढ़ और ऊँचा था। उसमें प्रवेश करना असंभव था। शाही सेना ने पड़ाव डाल दिया और वह रसद के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगी। सात मास व्यतीत हो गये, शाही सेना निरन्तर डेरा डाले पड़ी रही। दुर्ग में रसद घटने लगी। वीरमदेव ने राजवती से कहा—प्रिये! अब क्या होगा?

राजवती बोली—आपका क्या विचार है?

वीरमदेव ने उत्तर दिया—शाही सेना बहुत अधिक है। इससे छुटकारा पाना असम्भव है। परन्तु यह सब युद्ध मेरे लिए है, गेहूँ के साथ घुन भी पिसेंगे, यह क्यों ?

राजवती ने आश्चर्य से सिर ऊपर किया, और कहा—यह क्या जीवन-नाथ ! क्या शाही सेना आपको पाकर दुर्ग की ईंट से ईंट न बजा देगी ?

वीरमदेव ने ठंडी साँस भरी और कहा—नहीं, अलाउद्दीन कलानौर नहीं, वरन् मुझे चाहता है।

'और यदि वह आपको प्राप्त कर ले, तो दुर्ग पर अधिकार न जमायगा ?

'यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, यदि मैं अपने आपको शाही सेना के अर्पण कर दूँ, तो सम्भव है, सेना हटा ली जाय।'

राजवती ने मन-ही-मन सोचा, यदि कलानौर का भय नहीं, तो हमारे लिए इतना रक्त बहाने की क्या आवश्यकता है ?

वीरमदेव ने कहा—प्रिये ! तुम राजपूत स्त्री हो ?

'हाँ।'

'राजपूत मरने-मारने को उद्यत रहते है ?'

'हाँ।'

'जाति पर प्राण निछावर कर सकते है ?'

'हाँ।'

'मैं तुम्हारी वीरता की परीक्षा करना चाहता हूँ।'

राजवती ने सन्देह भरी दृष्टि से पति की ओर देखा और धीमे से कहा—मैं उद्यत हूँ।

वीरमदेव ने कुछ देर सोच कर कहा—इस युद्ध को समाप्त करना तुम्हारे वश मे है।

राजवती समझ न सकी कि इसका क्या अभिप्राय है, चकित-सी होकर बोली—किस तरह ?

'तुम्हें अपनी सबसे अधिक प्रिय वस्तु बलिदान करनी होगी।'

'वह क्या ?'

'मुझे गिरफ्तार करा दो, निर्दोष बच जायँगे।'

राजवती का कलेजा हिल गया। रोकर बोली—प्राणनाथ! मेरा मन कैसे मानेगा?

'राजपूत की आन निभाओ।'

राजवती ने कहा—आपकी इच्छा सिर आँखों पर, परन्तु यह बोझ असह्य है।

वीरमदेव ने प्रसन्न होकर राजवती को गले लगा लिया और मुँह चूमकर वे बाहर चले गये। राजवती भूमि पर लेटकर रोने लगी।

दो घण्टे के पश्चात् दुर्ग में एक तीर गिरा, जिसके साथ कागज लिपटा हुआ था। हरदेवसिंह ने खोलकर देखा। लिखा था—हम सिवाय वीरमदेव के कुछ नहीं चाहते। उसे पाकर हम तत्काल घेरा हटा लेंगे।

यह पढ़कर हरदेवसिंह का हृदय सूख गया। वीरमदेव को बुलाकर बोले—क्या तुमने मुसलमान सेना को कोई सन्देश भेजा था?

'हाँ, क्या उत्तर आया है?'

हरदेवसिंह ने कागज वीरमदेव को दिया और फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते बोले, 'बेटा! यह क्या? तुमने यह क्या सङ्कल्प किया है? अपने को गिरफ्तार करा दोगे?'

वीरमदेव ने उत्तर दिया, 'पिताजी! यह सब कुछ केवल मेरे लिए है। यदि आन का प्रश्न होता, दुर्ग की रक्षा का प्रश्न होता, तो बच्चा-बच्चा न्योछावर हो जाता, मुझे आशङ्का न थी। परन्तु अब कैसे चुप रहूँ, यह सब रक्तपात केवल मेरे लिए है। यह नहीं सहा जाता।'

उस रात्रि के अन्धकार में दुर्ग का फाटक खुला और वीरमदेव ने अपने आपको मुसलमान सेनापति के अर्पण कर दिया। प्रातःकाल सेना ने दुर्ग का घिराव हटा लिया।

(६)

स्त्री का हृदय भी विचित्र वस्तु है। वह आज प्यार करती है, कल दुत्कार देती है। प्यार के खातिर स्त्री सब कुछ करने को तैयार हो जाती है, परन्तु प्रतिकार के लिए उससे भी अधिक भयानक कर्म कर बैठती है।

सुलक्षणा असामान्य स्त्री थी। उसके हृदय में बाल्यावस्था से वीरमदेव

की मूर्ति विराज रही थी। उसे प्राप्त करने के लिए वह पुरुष के वेष में पठानों के साथ मिलकर वीरमदेव की सेना से लड़ी और इस वीरता से लड़ी कि वीरमदेव उस पर मुग्ध हो गये। परन्तु जब उसे पता लगा कि मेरा स्वप्न भंग हो गया है, तो उसने क्रोध के वशीभूत भयंकर कर्म करने का निश्चय कर लिया। अनेक यत्नों के पश्चात् वह अलाउद्दीन के पास गई। अलाउद्दीन पर जादू हो गया। सुलक्षणा अतीव सुन्दरी थी। अलाउद्दीन विलासी मनुष्य था, प्रेमकटारी चल गई। सुलक्षणा ने जब देखा कि अलाउद्दीन बस में है, तो उसने प्रस्ताव किया कि यदि आप वीरमदेव का सिर मुझे मँगवा दें, तो मैं आपको और आपके दीन को स्वीकार करूँगी। अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार किया। इस अन्तर में सुलक्षणा के निवास के लिए पृथक महल खाली कर दिया गया।

आठ मास के पश्चात् सुलक्षणा के पास सन्देश पहुँचा कि कल प्रातःकाल वीरमदेव का सिर उसके पास पहुँच जायगा। सुलक्षणा ने शान्ति का श्वास लिया। अब प्रेम की प्यास बुझ गई। जिसने मुझे तुच्छ समझकर ठुकराया था, मैं उसके सिर को ठोकर मारूँगी। वीरमदेव ने मुझे तुच्छ स्त्री समझा, परन्तु यह विचार न किया कि स्त्री देश भर का नाश कर सकती है। प्रेम भयानक है, परन्तु प्रतिकार उससे भी अधिक भयंकर है। सुलक्षणा हँसी। इस हँसी में प्रतिकार का निर्दय भाव छुपा हुआ था।

विचार आया, मरने से पहले एक बार उसे देखना चाहिए। वह उस दुर्दशा में लज्जित होगा। सहायता के लिए प्रार्थना करेगा। मैं गौरव से सिर ऊँचा करूँगी। वह पृथ्वी में घुसता जायगा, मेरी ओर देखेगा परन्तु करुण दृष्टि से। उस दृष्टि पर खिलखिलाकर हँस देने पर उसे अपनी और मेरी अवस्था का ज्ञान होगा।

इतने में बादशाह सलामत आये। सुलक्षणा के मन की इच्छा पूरी हुई। कुँआ प्यासे के पास आया। बादशाह ने देखा, सुलक्षणा सादी पोशाक में है। इस पर सुन्दरता उससे फूट-फूट कर निकल रही है। हँसकर बोला—सादगी के आलम में यह हाल है, तो जेवर पहनकर बिलकुल ही ग़जब हो जायगा। कहो तबीयत अच्छी है?

सुलक्षणा ने लजाकर उत्तर दिया, 'जी हाँ, परमात्मा की कृपा से।'

'तुम्हारी चीज कल सुबह तुम्हारे पास पहुँच जायगी।'

'मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, परन्तु एक प्रार्थना है, आशा है आप स्वीकार करेंगे।'

अलाउद्दीन ने सुलक्षणा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा, 'क्या आज्ञा है?'

'मै वीरमदेव से एक बार साक्षात् करना चाहती हूँ। प्रात काल से पहले एक बार भेट करने की इच्छा है।'

अलाउद्दीन ने सोचा, चिड़िया जाल मे फँस चुकी है, जाती कहाँ है? वीरमदेव को चिढाना चाहती है, इसमे हर्ज की बात नही। यह विचारकर उसने कहा, 'तुम्हारी बात मंजूर है, लेकिन अब निकाह जल्द हो जाना चाहिए।'

सुलक्षणा ने उत्तर दिया, 'घबराइए नहीं अब दो-चार दिन की बात है।'

बादशाह ने अँगूठी सुलक्षणा को दी कि दरोगा को दिखा कर वीरमदेव से मिल लेना और आप प्रसन्न होते हुए महल को रवाना हो गये।

(७)

सुलक्षणा ने नवीन वस्त्र पहने, माँग मोतियो से भरवाई, शरीर पर आभूषण अलकृत किये और वह दर्पण के सामने जा खडी हुई। उसने अपना रूप सहस्रो बार देखा था, परन्तु आज वह अप्सरा प्रतीत होती थी। कमरे मे बहुत-सी सुन्दर मूर्त्तियाँ थी, एक-एक करके सब के साथ उसने अपनी तुलना की, परन्तु हृदय मे एक भी न जमी। अभिमान सौंदर्य का कटाक्ष है। सुलक्षणा अपने रूप के मद मे मतवाली होकर झूमने लगी।

कहते है, सुन्दरता जादू है, और उससे पशु भी वश मे हो जाते हैं। सुलक्षणा ने सोचा, क्या वीरमदेव हृदय से शून्य है। यदि नहीं, तो क्या वह मुझे देखकर फडक न उठेगा? अपनी की हुई उपेक्षाओ के लिए पश्चात्ताप न करेगा? प्रेम सब-कुछ सह लेता है, परन्तु उपेक्षा नहीं सह सकता। परन्तु थोड़े समय पश्चात् दूसरा विचार हुआ। यह क्या? अब प्रेम का समय बीत चुका, प्रतिकार का समय आया है। वीरमदेव का दोष साधारण नहीं है। उसे उसकी भूल सुझानी चाहिए। यह शृङ्गार किसके लिए है? मैं

वीरमदेव के घावो पर नमक छिड़कने चली हूँ, उसे अपनी सुन्दरता दिखाने नहीं चली।

यह सोचकर उसने वस्त्र उतार लिये, और वीरमदेव को जलाने के लिए मुसलमानी वस्त्र पहनकर पालकी में बैठ गई।

रात्रि का समय था, गगन-मण्डल तारो से जगमगा रहा था। सुलक्षणा बुरका पहने हुए कैदखाने के दरवाजे पर गई और बोली, 'दारोगा कहाँ है ?'

सिपाहियो ने कहारो के साथ शाही कर्मचारी देखकर आदर से उत्तर दिया, 'हम उन्हे अभी बुला लाते है।'

सुलक्षणा ने नर्मी से कहा, 'इसकी आवश्यकता नहीं। मै वीरमदेव को देखूँगी, कैदखाने का दरवाजा खोल दो।'

सिपाही कॉप गये और बोले, 'यह हमारी शक्ति से बाहर है।'

सुलक्षणा ने कडककर कहा, 'आज्ञा पालन करो। तुम रानी सुलक्षणा की आज्ञा सुन रहे हो। यह देखो शाही अंगूठी है।'

रानी सुलक्षणा का नाम राजधानी के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर था। कोई उसके गौरवर्ण का अनुमोदक था, कोई रसीले नयनो का। कोई गुलाब से गालो का, कोई पंखड़ियो से होठो का। जब से उसने अलाउद्दीन पर विजय पाई थी, तब से उसकी सुन्दरता की कल्पित कहानियाँ घर-घर मे प्रसिद्ध हो रही थी। उसे किसी ने नहीं देखा, परन्तु फिर भी कोई न था, जो इस बात की डींग मारकर मित्रो मे प्रसन्न न होता हो कि उसने सुलक्षणा को देखा है।

सिपाहियो ने सुलक्षणा का नाम सुना और शाही अंगूठी देखी, तो उनके प्राण सूख गये। कॉपते हुए बोले, 'जो आज्ञा हो, हम हाजिर है।' यह कहकर उन्होने कैदखाने का दरवाजा खोल दिया और वे दीपक लेकर उस कोठरी की ओर रवाना हुए, जिसमे अभागा वीरमदेव अपने जीवन की अन्तिम रात्रि के श्वास पूरे कर रहा था। सुलक्षणा के पैर लड़खड़ाने लगे। अब वह सामने होगा, जिसकी कभी मन मे आराधना किया करती थी। आज उसे वध की आज्ञा सुनाने चली हूँ।

सिपाहियो ने धुँधला-सा दीपक दीवट पर रख दिया और आप दरवाजा

बन्द करके बाहर चले गये। सुलक्षणा ने देखा, वीरमदेव फर्श पर बैठा हुआ है और मृत्यु के घण्टे की प्रतीक्षा कर रहा है। सुलक्षणा के हृदय पर चोट पहुँची। यह राजपूत कुल-भूषण है और धर्म पर स्थिर रहकर जाति पर न्योछावर हो रहा है। मै भ्रष्टा होकर अपनी जाति के एक बहुमूल्य व्यक्ति के प्राण ले रही हूँ। यह मर जायगा, तो स्वर्ग के द्वार इसके स्वागत के लिए खुल जायेंगे। मैं जीवित रहूँगी, परन्तु नरक के पथ मे नीचे उतरती जाऊँगी। इसके नाम पर लोग श्रद्धा के पुष्प चढ़ायेंगे, मेरे नाम पर सदा धिक्कार पड़ेगी। यह मैंने क्या कर दिया। जिससे प्रेम करती थी, जिसके नाम की माला जपती थी, जिसकी मूर्ति मेरा उपास्य देव थी, जिसके स्वप्न देखती थी, उसे आप कहकर मरवाने चली हूँ। जिस सिर को अपना सिरमौर समझती थी, उसे नेत्र कटा हुआ कैसे देखेंगे? सुलक्षणा की आँखो से आँसुओं की धारा बह निकली। प्रेम की दबी हुई अग्नि जल उठी। सोया हुआ स्नेह जागृत हो पड़ा। हृदय मे पहला प्रेम लहराने लगा, नेत्रों मे पहला प्रेम झलकने लगा। सुलक्षणा की नींद खुल गई।

सुलक्षणा लडखड़ाते हुए पैरों से आगे बढ़ी, परन्तु हृदय काँपने लगा। पैर आगे करती थी, परन्तु मन पीछे रहता था। वीरमदेव ने सिर उठाकर देखा, तो अचम्भे मे आ गये और आश्चर्य से बोले, 'सुलक्षणा! यह क्या? क्या प्रेम का प्रतिकार धर्म, न्याय और जाति का रुधिर पान करके भी तृप्त नहीं हुआ, जो ऐसी अँधियारी रात्रि मे यहाँ आई हो?'

सुलक्षणा की आँखो से आँसुओं का फव्वारा उछल पड़ा, परन्तु वह पी गई। उसे आज ज्ञान हुआ कि मै कितनी पतित हो गई हूँ, तथापि सँभल कर बोली, 'नहीं, अभी मन शान्त नहीं हुआ।'

'क्या माँगती है? कहो मै देने को उद्यत हूँ।'

'इसी से यहाँ आई हूँ, मेरे घाव का मरहम तुम्हारे पास है।'

वीरमदेव ने समझा, मेरा सिर लेने आई है। सुनकर बोले, 'मरहम यहाँ कहाँ है, मै तो स्वयं घाव बन रहा हूँ, परन्तु तुम जो कहोगी, उससे पीछे न रहूँगा।'

सुलक्षणा ने अपना मुख दोनो हाथो से ढाँप लिया, वह फूट-फूटकर रोने लगी। रोने के पश्चात् हाथ जोड़कर बोली, 'तुमने एक बार मेरा हृदय तोड़ा है, अब प्रतिज्ञा भङ्ग न करना।'

वीरमदेव को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने मन मे सोचा, हो-न-हो, यह अपने किये पर लज्जित हो रही है, और यह बचाव का उपाय ढूँढ़ती है। आश्चर्य नही, मुझसे क्षमा माँगती हो। गम्भीरता से पूछा, 'क्या कहती हो?'

सुलक्षणा ने विनती करके कहा, 'मेरे वस्त्र पहनो, और यहाँ से निकल जाओ।'

वीरमदेव ने घृणा से मुँह फेर लिया और कहा, 'मै राजपूत हूँ।'

सुलक्षणा ने रोकर उत्तर दिया, 'तुम मेरे कारण इस विपत्ति मे फँसे हो। जब तक मैं स्वय तुमको यहाँ से न निकाल दूँ, तब तक मेरे मन को शान्ति न होगी। तुमने घाव पर मरहम रखने की प्रतिज्ञा की है। राजपूत प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करते। देखो इन्कार न करो, सिर न हिलाओ, मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करने दो।'

स्त्री का अन्तिम शस्त्र रोना है। जहाँ सब यत्न व्यर्थ हो जाते है वहाँ यह युक्ति सफल होती है। सुलक्षणा को रोते हुए देखकर वीरमदेव नर्म हो गये और धीरे से बोले, 'इसमे दो बातें शंकनीय है। पहली तो यह कि तुम मुसलमान हो चुकी हो। यह वस्त्र मै नहीं पहन सकता। दूसरे मैं निकल गया, तो मेरी विपत्ति तुम पर टूट पड़ेगी।'

सुलक्षणा ने उत्तर दिया, 'मैं अभी तक अपने धर्म पर स्थिर हूँ। यह वस्त्र तुम्हारे जलाने के लिए पहने थे, परन्तु अब अपने किये पर लज्जित हूँ। इसलिए तुम्हे यह शंका न होनी चाहिए।'

'और दूसरी बात?'

'मुझे तनिक भी कष्ट न होगा। मैं सहज मे ही प्रातःकाल छूट जाऊँगी।'

सुलक्षणा ने झूट बोला, परन्तु यह झूठ अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए था। यह पाप था, परन्तु ऐसा पाप जिस पर सैकड़ो पुण्य निछावर किये जा सकते है। वीरमदेव को विवश होकर उसके प्रस्ताव के साथ सहमत होना पड़ा।

जब उन्होंने वस्त्र बदल लिये, तो सुलक्षणा ने कहा, 'यह अँगूठी दिखा देना।'

वीरमदेव बुरका पहनकर निकले। सुलक्षणा ने शान्ति का श्वास लिया। वह पिशाचिनी से देवी बनी। बुराई और भलाई में एक पग का अन्तर है।

(९)

सुलक्षणा की आँखें अब खुलीं, और उसे ज्ञान हुआ कि मैं क्या करने लगी थी, कैसा घोर पाप, कैसा अत्याचार! राजपूतों के नाम को कलङ्क लग जाता। आर्य-स्त्रियों का गौरव मिट जाता। सीता-रुक्मिणी की आन जाती रहती। क्या प्रेम का परिणाम कर्म-धर्म का विनाश है? क्या जो प्रेम करता है, वह हत्या भी कर सकता है? क्या जिसके मन में प्रेम के फूल खिलते हैं, वहाँ उजाड़ भी हो सकती है? क्या जहाँ प्रीति की चाँदनी खिलती है, जहाँ आत्म-बलिदान के तारे चमकते हैं, वहाँ अन्धकार भी हो सकता है? जहाँ स्नेह की गंगा बहती है, जहाँ स्वार्थत्याग की तरंगें उठती हैं, वहाँ रक्त की पिपासा भी रह सकती है? जहाँ अमृत हो, वहाँ विष की क्या आवश्यकता है? जहाँ माधुर्य हो, वहाँ कटुता का निवास क्योंकर? स्त्री प्रेम करती है, सुख देने के लिए। मैंने प्रेम किया, सुख लेने के लिए। प्रकृति के प्रतिकूल कौन चल सकता है? मेरे भाग्य फूट गए। परन्तु जिनसे मेरा प्रेम है, उनका क्यों बाल बाँका हो? प्रेम का मार्ग विकट है, इस पर चलना विरल मनुष्यों का काम है। जो अपने प्राणों को हथेली पर रख ले, वह प्रेम का अधिकारी है।

जो संसार के कठिन-से-कठिन काम करने को उद्यत हो, वह प्रेम का अधिकारी है। प्रेम बलिदान सिखाता है, हिसाब नहीं सिखाता। प्रेम मस्तिष्क को नहीं हृदय को छूता है। मैंने प्रेमपथ पर पैर रखा, फल मुझे मिलना चाहिए। वीरमदेव ने विवाह किया, पति बना, संतानवान हुआ, अब उसको पहले प्रेम की बातें सुनाना, मूर्खता नहीं तो क्या है। मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करूँगी। रोग की औषधि कड़वी होती है।

इतने में कैदखाने का दरवाजा खुला। पिछले पहर का समय था।

आकाश से तारागण लोप हो गये थे। कैदखाने का दीपक बुझ गया और कमरे में सुलक्षणा के निराश हृदय के समान अन्धकार छा गया। घातक धीरे-धीरे पैर रखता हुआ कैदखाने में घुसा। सुलक्षणा समझ गई, प्रायश्चित्त का समय आ गया है। उसने कम्बल को लपेट लिया और चुपचाप लेट गई। घातक के एक हाथ में दीपक था, उसने ऊँचा करके देखा, कैदी सो रहा है। पाप कर्म अन्धकार में ही किये जाते हैं।

जल्लाद धीरे-धीरे आगे बढ़ा और सुलक्षणा के पास बैठ गया। उसने कम्बल सरकाकर उसका गला नंगा किया और उस पर छुरी फेर दी। सुलक्षणा ने अपने रक्त से प्रायश्चित्त किया। आप मरकर हृदयेश्वर को बचाया। जिसके रुधिर की प्यासी हो रही थी, जिसकी मृत्यु पर आनन्द मनाना चाहती थी, उसकी रक्षा के लिए सुलक्षणा ने अपना जीवन न्योछावर कर दिया। प्रेम के खेल निराले हैं।

पिछले पहर का समय था। उषा काल की पहली रेखा आकाश पर टूट पड़ी। जल्लाद सिर को लपेटे हुए आलाउद्दीन के पास पहुँचा और झुककर बोला, 'वीरमदेव का सिर हाजिर है।'

अलाउद्दीन ने कहा, 'कपड़ा उतारो।'

जल्लाद ने कपड़ा हटाया। एक बिजली कौंध गई, अलाउद्दीन कुर्सी से उछल पड़ा। यह वीरमदेव का नहीं सुलक्षणा का सिर था। अलाउद्दीन बहुत हताश हुआ। कितने समय के पश्चात आशा की श्यामल भूमि सामने आई थी, परन्तु देखते-ही-देखते निराशा में बदल गई। राजपूतनी के प्रतिकार का कैसा हृदय-वेधक दृश्य था! प्रेम-जाल में फँसी हुई हिन्दू स्त्री का प्रभाव-पूर्ण बलिदान, पतित होनेवाली आत्मा का पश्चात्ताप।

यह समाचार कलानौर पहुँचा, तो इस पर शोक किया गया, और वीरमदेव कई दिन तक रोते रहे। राजवती ने एक मन्दिर बनवाकर उसके ऊपर सुलक्षणा का नाम खुदवा दिया। अब न वीरमदेव इस लोक में है न राजवती, परन्तु वह मन्दिर अभी तक विद्यमान है, और लोगों को राजपूतनी के भयङ्कर प्रायश्चित्त का स्मरण करा रहा है।

प्रश्नावली

१. इस कहानी को पढ़कर लेखक की शैली और लेख पर अपना मत प्रकट कीजिए।
२. इसमें किसका प्रायश्चित्त और किस प्रकार से हुआ है?
३. वीरमदेव की वीरता पर अपना मत प्रकट कीजिए।

विद्रोही

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

(सन् १८९१)

आप कानपुर में रहते थे। आप हँसमुख और विनोदप्रिय स्वभाव के थे। आपको संगीत और फोटोग्राफी से विशेष प्रेम है। आप उपन्यास और कहानी लेखक हैं। आपकी रचनाओं में पारिवारिक और गार्हस्थ्य जीवन का स्वाभाविक और सफल चित्रण पाया जाता है। इस विषय के आप बेजोड़ लेखक थे।

उपन्यास—माँ, भिखारिणी।

गल्प-संग्रह—मधुशाला, मणिमाला।

(१)

'मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।'

'चुप रहो—तुम क्या जानो।'

'इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।'

'बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शान्त होगी।' शक्तिसिंह ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा।

'कलंक लगेगा, अपराध होगा।

'अपमान का बदला लूँगा। प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूँगा। आज मैं विजयी होऊँगा।' बड़ी दृढ़ता से कहकर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा। मुगल-सेना के चतुर सिपाही अपने-अपने घोड़ों की

परीक्षा ले रहे थे। धूल उड़ रही थी। बड़े साहस से सब एक दूसरे मे उत्साह भर रहे थे।

'निश्चय महाराणा की हार होगी। बाईस हजार राजपूतो को दिन भर मे मुगल-सेना काटकर सूखे डण्ठल की भाँति गिरा देगी।'—साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

'भाई पर क्रोध करके देश-द्रोही बनोगे'—कहते-कहते उस राजपूतबाला की आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगी।

शक्तिसिंह अपराधी की नाई विचार करने लगा। जलन का उन्माद उसकी नस-नस मे दौड रहा था। प्रताप का प्राण लेकर ही छोडेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी। नादान दिल किसी तरह न मानेगा। उसे कौन समझा सकता था?

रण भेरी बजी।

कोलाहल मचा। मुगल-सैनिक मैदान मे एकत्रित होने लगे। पत्ता-पत्ता लड़खड़ा उठा।

बिजली की भाँति तलवारे चमक रही थी। उस दिन सब मे उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फडकने लगी।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़कर कहा—'आज अन्तिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर ही लौटूँगा?'

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—'ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।'

(२)

एक महत्वपूर्ण अभिमान के विध्वस करने की तैयारी थी। प्रकृति काँप उठी। घोडो और हाथियो के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा। बरसाती हवा के थपेडो से जगल के वृक्ष रण-नाद करते हुए झूम रहे थे। पशु-पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक मैदान मे राजपूत-सेना मोरचाबन्दी कर रही थी। हल्दी-घाटी की ऊँची चोटियो पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

'महाराणा की जय!'—शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल-सेनाओं

मे घुस पड़ी। युद्ध आरम्भ हुआ। भैरवी रणचण्डी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जन्तुओ की भाँति अपने-अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिको के निडर घोड़े हवा मे उड़ने लगे। तलवारे बजने लगीं। पर्वतो के शिखरो पर से विषैले बाण मुगल-सेना पर बरसने लगे। सूखी हल्दी-घाटी मे रक्त की धारा बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रु-सेना का व्यूह टूटकर तितर-बितर हो गया। दोनो ओर के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे।

देखते-देखते लाशो के ढेर लग गये।

भूरे बादलो को लेकर आँधी आई। सलीम के सैनिको को बचने का अवकाश मिला। मुगलो की सेना मे नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धाँय-धाँय करती बन्दूक से निकली हुई गोलियाँ दौड़ रही थी—ओह! जीवन कितना सस्ता हो गया था।

महाराणा शत्रु-सेना मे सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाजी लगी थी। सब तरफ़ से घिरे थे। हमला-पर-हमला हो रहा था। प्राण सकट मे पडे थे। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नही, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नही था।

मानसिंह की कुमत्रणा सिद्ध होनेवाली थी। ऐसे आपत्तिकाल मे वह वीर सरदार सेना-सहित वहाँ कैसे आया? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राज-चिह्नो को उतारकर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—'यह क्या?'

'आज मरने के समय एक बार राज-चिह्न धारण करने की बडी इच्छा हुई है।'—हँसकर मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्माद-पूर्ण हँसी मे अटल धैर्य देखा।

मुगलो की सेना मे से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया। उसने देखा घायल प्रताप रण-क्षेत्र से जीते-जागते निकले चले जा रहे है। और वीर मन्नाजी को प्रताप समझकर मुगल उधर ही टूट पडे है।

उसी समय दो मुगल-सरदारो के साथ महाराणा के पीछे-पीछे

शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

(३)

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटनेवाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाईस हजार राजपूत वीरों में से केवल आठ हजार बच गये थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में शव कटे पड़े थे—कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है। दो घड़ियों में हँसते-बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये? ऐसे निरीह जीवन पर इतना गर्व!

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला पड़ीं—

'ये सब भी राजपूत थे। मेरी ही जाति के ख़ून थे। हाय रे मैं! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ—क्या सचमुच पूरा हुआ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्त! यह तेरे चिरकाल के लिए पैशाचिक आयोजन था। तू भूला, पागल! तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से जो अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्मभूमि की मर्यादा बचाने चला था। वह जन्मभूमि जिसके अन्न-जल से तेरी नस भी फूली-फली है। अब भी माँ की मर्यादा का ध्यान कर।

सहसा धाँय-धाँय गोलियों का शब्द हुआ। चौंककर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुगल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घोड़ा लस्त-पस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई—फ़ों!

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के-तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा। वे आँखें पूछ रही थीं, क्या मेरे प्राण पाकर निहाल हो जाओगे? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसा-तृप्ति नहीं हुई?

किन्तु यह क्या? शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था।

वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—'नाथ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ।'

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस मे मिल गये, दोनो की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्गद् हो गये।

इस शुभ मुहूर्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने उन डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—'भैया! अब आप विलम्ब न करें, घोड़ा तैयार है।'

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

(४)

श्रावण का महीना था।

दिन-भर की मार-काट के पश्चात् रात्रि बड़ी सुनसान हो गई थी। शिविरों में से महिलाओं के रोदन की करुण ध्वनि हृदय को हिला देती थी।

हजारों सुहागिनियों के सुहाग उजड़ गये थे। उन्हें कोई ढाढस बँधाने-वाला न था, था तो केवल हाहाकार, चीत्कार, कष्टों का अनन्त पारावार। शक्तिसिंह अभी तक अपने शिविर में नहीं लौटा था। उसकी पत्नी भी प्रतीक्षा में विकल थी, उस हृदय में जीवन की आशा-निराशा क्षण-क्षण उठती-गिरती थी।

अंधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे। एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया। पत्नी ने कौतूहल से देखा, उसके कपड़े खून से तर थे।

'प्रिये!'

'नाथ!'

'तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया।'

प्रश्नावली

१ शक्तिसिंह कौन था ? राणाप्रताप से उसे क्यों जलन थी ?

२. शक्तिसिंह के चरित्र के गुण दोष की व्याख्या करो और मन्नासिंह के चरित्र से उसकी तुलना करो ।

३. निम्नलिखित उद्धरणों का प्रसग के साथ मतलब लिखिए ।

क एक महत्त्व-पूर्ण अभिमान के विध्वस करने की तैयारी की ।
ख. मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था ।
ग मानसिंह की कुमन्त्रणा सिद्ध होनेवाली थी ।
घ. 'आज मरने के समय एक बार राजचिह्न धारण करने की इच्छा हुई है ।'

४. किन परिस्थितियों ने शक्तिसिंह के मनोभावों में परिवर्तन किया और उसने क्यों कहा, 'मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया ।'

५. शक्तिसिंह और उसकी पत्नी में किस बात पर मतभेद था ?

ब्याह

जैनेन्द्रकुमार

(सन् १९०५)

आप दिल्ली निवासी हैं । आपका जन्म सन् १६०५ के लगभग हुआ । आप प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति है । अपनी प्रतिभा के बल से ही आपने उच्चकोटि के कहानी लेखकों में स्थान प्राप्त कर लिया है । आप अँग्रेजी कहानी-कला के भी मर्मज्ञ हैं, कहानी लिखने में आपकी एक विशेष शैली है । आप विषय का इतना अच्छा प्रतिपादन करते हे कि उसकी प्रतिमूर्ति खड़ी कर देते हैं ।

आपकी कहानियों के सग्रह—फाँसी, एक रात, दो चिड़ियाँ और वातायन नाम से प्रकाशित हुए हैं । आपके 'परख' नामक उपन्यास पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने ५००) पुरस्कार दिया था । आपके अभी तक त्याग-पत्र, सुनीता कल्याणी आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके है ।

(१)

बड़े भाई के बाद अब घर का बोझ मुझ पर पड़ा, लेकिन मुझे इसमे कुछ दिक्कत नहीं हुई । सेशन जज हूँ, ७००) मासिक पाता हूँ—और घर मे

मुकाबले को कोई नहीं है माँ सेवा और आज्ञानुसरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती, और पत्नी जितनी ही कम शिक्षिता है, उतनी ही ज्यादा पतिप्राण है ।

किन्तु भाई साहब जिसे अपने अन्तिम समय में खास तौर से बोझ बताकर मुझे सौंप गये, उसके सम्बन्ध में मुझे अवश्य सतर्क और चिंतित रहना पड़ता है । ललिता मैट्रिक पास करने के साथ अपना सोलहवाँ साल पार कर चुकी है । भाई साहब, अपने जीवन-काल में इसे जहाँ तक हो, वहाँ तक पढाना चाहते थे । शायद कारण यह हो कि खुद बहुत कम पढे थे । किन्तु आखिरी समय, आश्चर्य है, उन्होंने ललिता की शिक्षा के बारे में तो कुछ हिदायत न दी, कहा तो यह कहा कि 'देखो ललिता का ब्याह जल्दी कर देना । मेरी बात टालना मत, भूलना मत ।'

अब भाई साहब की अनुपस्थिति में ललिता को देखते ही, उनके उपर्युक्त शब्द बडी बेचैनी के साथ भीतर विद्रोह करने लगते हैं । मैं उन्हें भीतर-ही-भीतर खूब उलटता-पलटता हूँ, जानना चाहता हूँ—यह क्यों कहा ?—मेरा क्या कर्तव्य है ?

ललिता को बडी जिज्ञासा, बडी चिन्ता से देखता हूँ । शायद उन शब्दों का ललिता के व्यक्तित्व से कोई सामञ्जस्य है । फिर रह-रहकर यह बात मन में आती है—असम्भव है, भाई साहब ने समझा हो, मैं पीछे ललिता को ठीक प्यार, सँभाल और अपनेपन के साथ नहीं रख पाऊँगा, और इसीलिए ऐसा कहा हो ? जब यह बात मन में उठती है तब भाई साहब पर बहुत बड़ा क्रोध आता है । उन्होंने बे-भरोसे का आदमी समझा–जैसे मैं उनका सगा भाई, उन्हीं का पाला-पोसा और पढाया-लिखाया नहीं हूँ । परन्तु ऐसी बात सोचकर मैं ललिता के ब्याह के बारे में व्यग्र और उद्विग्न नहीं हो उठता । सोचता हूँ, भाई साहब की मशा पूरी करने का काम अब मुझ पर है—ललिता को खूब पढ़ाऊँगा और खूब धूम से उसका विवाह करूँगा । दीया लेकर ऐसा लड़का ढूँढूँगा जो दुनिया में एक हो । हमारी ललिता ऐसी जगह जायगी कि भैया भी स्वर्ग में खुशी से फूल उठेंगे—पर जल्दी नहीं ।

इस तरह ललिता का पढ़ना जारी है। बी० ए० में पहुँचेगी, तब कहीं ब्याह की बात सोचूँगा।

(२)

ललिता भी हमारे घर में एक अजीब लड़की है। कुछ समझ में ही नहीं आता। जाने कैसे मैट्रिक फर्स्ट क्लास में पास कर गई। जब पढ़ने में इतनी होशियार है तब व्यवहार में क्यों ऐसी अल्हड़ है। उसे किसी बात की समझ ही नहीं है। लोग कुछ कहें, कुछ समझें—जो मन में समाया उसे वह करही गुजरती है। नौकर हों सामने, और चाहे अतिथि बैठा हो, उसे जोर की हँसी आती है, तब वह कभी उसे न रोक सकेगी। गुस्सा उठेगा तब उसे भी बेरोक निकाल बाहर करेगी। सबके सामने बे हिचक मुझ चाचा को चूमकर प्यार करने लगती है। और मेरी ही तनिक-सी बात पर ऐसा तनक उठती है कि बस! हँसती तो वह खूब है, गुस्सा तो उसका आठवाँ हिस्सा भी नहीं करती होगी हाँ जब करती है तब करती ही है, फिर चाहे कोई हो, कुछ हो!

मैं चाहता हूँ, वह कुल-शील का, सभ्यता-शिष्टता का, अदब-कायदे का, छोटे-बड़े का व्यवहार में सदा ध्यान रखे। पर उससे इन सब बातों पर निबन्ध चाहे मुझसे भी अच्छा लिखवा लो, इन सबका वह ध्यान नहीं रख सकती। नौकरों से अपनापन जोड़ेगी, हमसे जैसी बची-बची रहेगी। सह-पाठियों और अँगरेजी जाननेवालों से हिन्दी के सिवा और कुछ न बोल सकेगी, पर नौकरों और देहातियों से अँग्रेजी में ही बोलेगी। नौकरों को तो कभी-कभी अँग्रेजी में पाँच-पाँच मिनट के लेक्चर सुना देती है, मानो दुनियाँ में यही उसकी बात को 'हृदयंगम' करनेवाले हों! समकक्षियों और बड़ों में धीर-गम्भीर और गुमसुम रहती है, जैसे सिर में विचार ही विचार हैं, जबान नहीं है। छोटों में ऐसी खिली-खिली और चहकती फिरती है, जैसे उसका सिर खाली है, कतरने को बस जबान ही है।

मिसरानी को बहुत ही तंग करती है। पर मुश्किल यह है कि मिसरानी को इस बात की बिलकुल शिकायत नहीं है। इस कारण मुझे उसको डाँटने-धमकाने का पूरा मौका नहीं मिलता। वह बे-मतलब चौके में घुस जाती है,

कभी उँगली जला लेती है, कभी नमक अपने हाथ से डालने की जिद करके दाल मे अधिक नमक डाल देती है। आटा सानते-सानते, जब वहा-वहा फिरने के लायक हो जाता है तब मिसरानी से महाय्य की प्रार्थना करती है और मिसरानी उसके बाये कान को हँसते-हँसते अपने बाये हाथ से जरा टेढ़ा-तिरछा करके आटा ठीक कर देती है। मालकिन के मुलायम कानो का मसलने का जब अधिकार-संयोग मिले तब उस अवसर को मिसरानी-जी जान-बूझकर क्यो खोये?—उन्हे दिक होना पडता है तो हो।

लेकिन मुझे यह सब अच्छा नही लगता, जैसे जहाँ जायगी वहाँ इसे रोटी ही बनानी पड़ेगी? फिर क्यो फिजूल ऐसे कामो मे हाथ डालती है?—यह तो होता नही कि टेनिस का अभ्यास बढा ले, शायद उसी मे चमक उठे और अखबारो मे नाम हो जाये, क्या ताज्जुब कोई 'कप' ही मिल जाय। इसलिए मै उसे काफी गुरु-मुद्रा के साथ धमका देता हूँ। पर वही जवाब दे देती है, अगर मेरी निज की लडकी इस तरह मुझे जवाब देती तो मै थप्पड से उसका मुँह लाल कर देता। फिर ललिता के मुँह से जवाब सुनकर न मुझे ज्यादा गुस्सा होता है, न बहुत अचरज। गुस्सा होता भी है तो मै कुछ कर भी तो नही सकता। मेरे समीप वह भाई साहब की स्मृति है, उनकी प्रतिमूर्ति है, इसलिए उसका जवाब सुनकर मैं चुप रह जाता हूँ।

यह लडकी जरा भी दुनिया नही समझती। यह समझती यह है कि उसकी कोर्स की किताबो मे, उसके कल्पना-क्षेत्र मे ही सारी दुनिया बन्द है। उससे बहस कौन करे? कुछ समझती ही नही, करे अपने जी की। पर डिक?

डिक हमारे जिले के डिप्टी कमिश्नर का लडका है। अभी एक वर्ष से विलायत से आया है। आक्सफर्ड मे पढता है। पिता ने हिन्दुस्तान देखने के लिए बुलाया है। पिता की राय है, डिक आई० सी० एस० मे जाय।

बड़ा अच्छा है। डिक को घमण्ड नाम को भी नही है। बडा मृदु-भाषी, सुशील, शिष्ट। यह हर तरह से सुन्दर जँचता है।

लेकिन ललिता तो डिक से सदा दूर-दूर रहती है। यह नही कि उससे बोलती नहीं, मौके पर ,खूब बोलती है। पर उस बोलने को बीच में लाकर ही वह अपने और डिक के बीच अनुल्लघनीय अन्तर डालने का उपक्रम

करती रहती है। डिक से ही सुना है। यह भी जानता हूँ कि डिक इस अन्तर को जितना ही अनुल्लंघनीय पाता है, उतना ही देखता है कि एक अनिश्चित चाह उसे और विवशता मे चाबुक मार-मारकर भड़का रही है।

(३)

इधर ललिता मे एक अन्तर देख पडने लगा है। एक ओर हँसना एकदम कम हो गया है, दूसरी ओर वक्त-बेवक्त पढना-लिखना होने लगा है। अब वह बहुत पढती है। मानो जी उचाट रहता हो, और उसी को जबर्दस्ती लगाये रखने के लिए ये सब प्रयत्न और प्रपञ्च किये जाते हो।

इधर एक खबर डिक के बारे मे भी लगी है, कुछ दिनो से उसका इधर आना कम हो गया। उस दिन अचानक यह खबर मिली कि उसने एक हिन्दी-ट्यूटर लगा लिया है, और हिन्दी-प्रवेशिका के पहले भाग को खतम कर डालने मे दत्त-चित्त है।

ये लक्षण बडे शुभ मालूम होते है, दोनो मे कुछ खटपट हो गई है। एक दूसरे को नजदीक लाने मे कलह की उन छोटी-छोटी बातो से अचूक और अमोघ चीज कोई नही। मालूम होता है, ललिता ने अपनी झिड़की से डिक को ठीक मार्ग दिखा दिया है। इसी से डिक उस पर चलने की तैयारी कर रहा है।

इतना सब कुछ समझने पर भी ललिता की ओर से मुझे डर ही लगा रहता है। मालूम नही, उसके जी मे कब क्या समा उठे। मालूम नही वह किस-किस लोक मे रहती है, किस प्रणाली से सोचती है। उसके जी का भेद मै नही समझ पाता।

मै कचहरी से आकर पूरे कपडे तक नही उतार पाया कि ललिता बे-धड़क मेरे कमरे मे आकर अपनी मेज की शिकायत करने लगी।

'चाचाजी, मैने कितनी बार आपसे, मेज ठीक करवा देने के लिए कहा? आप ध्यान नही देते यह कैसी बात है?'

मै मानता हूँ, मुझसे कई बार कहा गया है, फिर भी मैंने कहा—'अच्छा-अच्छा, अब मै करवा दूँगा।'

'कब से अच्छा-अच्छा ही हो रहा है। अभी करवा के दीजिए।'

'अभी ? अच्छा अभी सही।'

'नहीं-नहीं नहीं। मैं अभी करवा लूँगी। आप तो यों ही टालते रहते हैं।'

'अब नहीं टालूगा। बस।'

'नहीं।'

'अभी मिस्त्री काम से लौटे होंगे ? अभी कौन मिलेगा ?'

'मिस्त्री बस मिल जायँगे। मिल जायँ तो मैं लगा लूँ ?'

'हाँ-हाँ, लगा लो।'

यह कहकर उसे टाला, कपड़े उतारे, हाथ-मुँह धोया और अखबार लेकर ईजी चेयर पर पड गया।

कुछ देर बाद खुट-खुट की आवाज कानों मे पडी। 'नेशन' के अग्रलेख का तर्क मुझे ठीक नहीं लग रहा था। उसे पढते-पढते ऊँघी-सी आने लगी थी, तभी खुट-खुट का शब्द सुनकर अन्दर पहुँचा।

'क्या है, ललिता ?' कहता हुआ मैं उसके कमरे में चला गया, देखा एक बढई काम में लगा है।

'आपने कहा था न कि मिस्त्री लगा लेना।'

कहा था तो कहा होगा—पर मुझे उसकी याद नहीं थी। बोला—'तो तुम लपककर उसे बुला भी लाईं।—मानो तैयार ही बैठा था।'

'नहीं। जाते देखा, बुला लिया।'

'दिन भर काम करके घर लौट रहा होगा—सो तुमने बुला लिया। बेचारे मजदूर पर कोई दया नहीं करता। तुम्हारा क्या ?'

'कोई बेगार थोड़े ही है। उजरत भी तो दी जायगी। यह तो इसमें खुश ही होगा।' मुड़कर उसने मिस्त्री से पूछा, 'क्यो, बाबा ?'

मिस्त्री बुड्ढा सिक्ख था। बड़ी लम्बी सफेद दाढ़ी थी। सफेद ही साफा था, आँखो मे स्नेह और दीनता का रस था। ललिता का प्रश्न सुनकर उसने ऐसे देखा, मानो उसकी आँखो मे की दीनता और स्नेह एक-दम छलक

आये है। ललिता के मुँह से निकले 'बाबा' सम्बोधन की मृदुता ने उसके प्राणों मे सुख की एक सिहर-सी लहरा दी। उसने कहा—

'नही, बेटी। मुझे सबेरे से कोई काम नही मिला। मेरा घर यहाँ नही है। बहुत दूर है। पेशावर तुमने सुना होगा, उसके पास अटक है, अटक के पास मेरा घर है। दरिया सिन्ध इसको छूकर बहता है। मै यहाँ आज ही आया हूँ। काम न मिलता तो न जाने मेरा क्या होता ?'

दरिया सिन्ध के किनारेवाले हिन्दुस्तान के छोर पर के गाँव से यह बुड्ढा सिक्ख, नर्मदा के किनारे के हिन्दुस्तान के बीचो-बीच बसे हुए इस होशङ्गाबाद मे, इस प्रकार बे-पैसे, किस आफत का मारा आ पहुँचा, यह सब जानना मुझे आवश्यक न जान पड़ा। पर ललिता ने कुरेद-कुरेद कर उसकी कहानी पूछी। मैने भी सुनी।

जब वह बुड्ढा नहीं था, जवान था,—तब की बात है। दरिया मे बाढ़ आ गई। झोपड़ा बह गया, खेत डूब गये। वह उसकी घरवाली और उसका एक छोटा लड़का इन तीनो ने एक दूर गाँव मे जाकर आश्रय लिया। पर खाँये कहाँ से ? जो थोडा-बहुत नकद बाढ़ के मुँह से बचाकर ले आ सके थे, उससे ही बैठकर कब तक खाँयेगे ? ऐसी ही चिन्ता के समय उसे एक तरकीब सुझाई गई। मदरास चला जाय तो वहाँ बहुत आदमियो की जरूरत है, खूब तनख्वाह मिलती है, और सहूलियते है। खूब आराम है। थोड़े ही दिनो मे मालामाल होकर लौट सकेगा। मदरास पहुँचा,—वहाँ से फ़िजी। घर से निकलने पर यह अब उसके बस का न रह गया था कि वह फ़िजी न जाय। तब फ़िजी न जाता तो शायद जेल जाना पड़ जाता, ताज्जुब नही जान से हाथ धो बैठने का ही मौका आ जाता। फिजी मे काम किया। पीछे से वहाँ कमाने का मौका हो सकता था, पर बच्चे की, घरवाली की याद ने वहाँ रहने न दिया। जहाज के टिकट भर का पैसा पास होते ही वह चल दिया। मदरास आया। आरी और बसूलो की सहायता से उसने मदरास मे एक महीने तक अपना पेट भरा और उनसे ही एक महीने बम्बई आने तक का किराया जुटाया। बम्बई मे जैसे-तैसे पेट तो भर सका, लाख कम खाने और हजार ज्यादे काम करने पर भी वह ऊपर से कुछ न जुटा सका।

आखिर लाचार बे-टिकट चल दिया। होशङ्गाबाद मे टिकटवालो ने उतार दिया। वहाँ से वह अपने औजार सँभाले चला आ रहा था। बहुत समझो, उसकी वह पूँजी रेलवालो ने छोड़ दी।

कहानी सुनकर बुड्ढे पर दया करने को मेरा जी चाहा। पूछा—

'ललिता, इसे कितने मे तय किया था ?'

'ठहराया तो कुछ नही।'

'नही ठहराया ?'

'नहीं।'

'अच्छा जो ठहराया जाय उससे एक आना ज्यादा देना।'

मुझसे 'अच्छा' कहकर सिक्ख से उसने पूछा—

'बाबा, तुम यहाँ रहोगे ?'

'ना, बेटी।'

'क्यो, बाबा ?'

'घर तो अपना नही है। घर क्या छोडा जाता है ? फिर बच्चे को कब से नही देखा। बीस साल हो गये।'

'बाबा, क्या पता वह मिलेगा ही। बीस बरस थोडे नही होते।'

'हाँ, क्या पता ! पर मैंने अपने हिस्से की काफी आफत भुगत ली है। परमात्मा अब इस बुड्ढे के बुढ़ापे मे उसका बचा-खुचा नहीं छीन लेगे। मुझे पूरा भरोसा है, वह मुझे जरूर मिलेगा, हाँ उसकी माँ तो शायद ही मिले।'

ललिता के ढग से जान पडा, वह इतनी थोड़ी-सी बाते करके सन्तुष्ट नही है। वह उस बुड्ढे से और बाते करना चाहती है। पर मुझे तो समय वृथा नही गँवाना था। मै फिर एक आना ज्यादे देने की हिदायत देकर चला आया।

(४)

वह बुड्ढा तो धीरे-धीरे मेरे घर से हिलने लगा। ज्यादातर घर पर दीखता। किसी न किसी चीज को ठीक करता। उसने घर के सारे बक्सो को पालिश से चमकाकर नया कर दिया। नई-नई चीजे भी बहुत-

सी बना दी। वह ललिता का विशेष कृपापात्र था, और ललिता उसकी विशेष कृतज्ञतापात्र थी। उसने एक बडा सुन्दर सिंगारदान ललिता को बनाकर दिया। एक कैश-बक्स। मेरे लिए हैट-स्टैंड, खूँटियाँ वगैरह चीजें बनाकर दीं। मैंने भी समझा कि वह अपने लिए इस तरह ख्वामख्वाह मजदूरी बढा लेता है, चलो इसमें गरीब का भला ही है।

लेकिन हर एक चीज की हद होनी चाहिए। गरीब की भलाई की जहाँ तक बात है, वहाँ तक तो ठीक। पर उनसे दोस्ती-सी पैदा कर लेना, उनको अपना ही बना बैठना,—यह भी कोई बुद्धिमानी है। पर अल्हड ललिता यह कुछ नहीं समझती। उसका तो ज्यादा समय अब इस बुड्ढे से ही छोटी-मोटी चीजें बनवाने में, उससे बातें करने में बीतता है।

मैं यह भी देखता हूँ कि बुड्ढा दीनता और उम्र के अतिरिक्त और किसी बात में बुड्ढा नहीं है। बदन से खूब हट्टा-कट्टा है, खूब लम्बा-चौडा है। दाढी-मूँछों से भरा हुआ उसका चेहरा एक प्रकार की शक्ति से भी भरा है। यह मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैंने उसे एक दिन बुलाकर कहा—बुड्ढे, अब गाँव कब जाओगे?'

'गाँव?—कैसे जाऊँगा जी, गाँव?'

'क्यों?'

'जी।'

'देखो, थोड़ी-बहुत मदद की जरूरत हो, मैं कर दूँगा। पर तुम्हें अब अपने बच्चे के पास जाना चाहिए। और यहाँ जब काम होगा, बुला लूँगा, तुम्हारा फिजूल आना-जाना ठीक नहीं।'

बुड्ढा इस पर कुछ न बोला—मानो उसे स्वीकार है।

उसके बाद से वह घर पर बहुत कम दीखता। एक बार आया तब मैंने जवाब तलब किया—

'बुड्ढे। क्यों आये?—क्या काम है?'

'जी, बिटिया ने बुलाया था।'

'बिटिया,—कौन बिटिया?'

'वही, आपकी।'

'देखो, बुड्ढे, गुस्ताखी अच्छी नहीं होती।'

इस पर बुड्ढा बहुत-कुछ गिडगिडाया, 'गुस्ताखी नहीं, गुस्ताखीनी।' और उसने बहुत-सी शपथ खाकर विश्वास दिलाया कि वह कभी अपने को हमारे बराबर नहीं समझ सकता, 'आप तो राजा हो, हम तो फिकर नाचीज है, और 'वह तो मालकिन है, साक्षात् राजरानी है' आदि—और अन्त मे धरती पर माथा टेककर वह चला गया।

बुड्ढे की ओर से मुझे मुक्ति मिली। पर उसी रात को मेरे पास आया डिक। उसने बताया कि वह हिन्दी शिक्षावली दो भाग खतम कर चुका है, वह और भी जो ललिता की आज्ञा हो करने को तैयार है, वह अब जल्दी ही इँगलेण्ड वापस चला जायगा, पर ललिता के बिना कैसे रहेगा, उसने अपने पैसे के, अपनी योग्यता के, अपनी स्थिति के, अपने बडप्पन के वर्णन सक्षेप मे पेश किये, अपना प्रेम बतलाया और उसके स्थायित्व की शपथ खाई, इस तरह अपना सम्पूर्ण मामला मेरे सामने रखने के बाद मेरी सम्मति चाही। पर मेरी सम्मति का प्रश्न नहीं था। मेरी तो उसमे हर तरह की सम्मति थी। मैने उसे आश्वासन दिया—'कल ललिता से जिक्र करूँगा।'

वह बोला—'देखिए, मै नही जानता क्या बात है। पर मुझे ललिता अवश्य मिलनी चाहिए। मेरी उससे बाते हुई है, खूब हुई है। वह मेरे गोरे-पन से घबडाती है। पर मै उससे भी कह चुका हूँ, आपसे कहता हूँ कि इसमे मेरा दोष तो है नही। फिर हिन्दी मै सीखता जा रहा हूँ। वह कहती है, मुझमे और उसमे बहुत अन्तर है। मै मानता हूँ—है। न होता तो बात ही क्या थी। पर हम एक हुए तो मै कहता हूँ, सब अन्तर हवा हो जायगा। वह जो चाहेगी सो ही करूँगा।'

मैने उसे विश्वास दिलाया, 'मै अपने भरसक करूँगा।'

उसने कहा, 'ललिता के भारतीय वातावरण मे पले होने के कारण यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वह इस सम्बन्ध मे अपने अभिभावक से आज्ञा प्राप्त करे।' इसीलिए उसने मुझसे कहना ठीक समझा। मैने फिर उसे वही विश्वास दिलाया और वह मेरी चेष्टा मे सफलता की कामना मनाता हुआ चला गया।

(५)

अगले रोज ललिता से जिक्र छेड़ा। मैंने कहा—

'ललिता, रात मे डिक आया था।'

ललिता चुप थी।

'तुम जानती हो, वह क्या चाहता है ? तुम यह भी जानती होगी कि मैं क्या कहता हूँ ?'

वह चुप थी। वह चुप ही रही।

मैंने सब ऊँच-नीच उसे बताया। अपनी स्पष्ट इच्छा,—यदि आज्ञा हो सके तो आज्ञा—जतला दी, ऐसे सम्बन्धों का औचित्य प्रतिपादन किया, संक्षेप में सब-कुछ कहा। मेरी बात खतम न हो गई तब तक वह गम्भीर मुँह लटकाये, एक ध्यान, एक मुद्रा से, निश्चल खड़ी रही। मेरी बात खतम हुई कि उसने पूछा—

'बाबा को आने से आपने मना किया था ?'

कहाँ की बात कहाँ ? मैं समझ नहीं पाया।

'कौन बाबा ?'

'वही—बुड्ढा सिक्ख, मिस्त्री।'

'हाँ, मैंने समझाया था, उसे फिजूल आने की जरूरत नहीं।'

'तो उनसे (डिक से) कहिए, मैं अपने को इतनी सौभाग्यवती नहीं बना सकती। मुझ नाचीज की फिक्र छोड़, क्योंकि भाग्य में मुझे नाचीज ही बने रहकर रहना लिखा है।'

मुझे बड़ा धक्का लगा। मुँह से निकला—

'ललिता !'

'उनसे कह दीजिएगा—बस।' यह कहकर वह चली गई। मैं कुछ न समझ सका।

अगले रोज कचहरी से लौटा तो घर पर ललिता न थी। कालेज मे दिखवाया, उसके महिला-मित्रों के यहाँ पुछवाया, फिर उस बुड्ढे मिस्त्री के यहाँ भी ढुँढ़वाया, वह बुड्ढा भी गायब था।

(६)

पूरा यकीन है, पुलिस ने खोज मे कमी न की। और पूरा अचरज है कि वह खोज कामयाब नही हुई। मै समझता हूँ, वह सिक्ख सीधा आदमी न था। छटा बदमाश है और उस्ताद है,—पुलिस की आँख बचाने का हुनर जानता है।

डिक को जब इस दुर्घटना की सूचना और ललिता का सन्देश मैंने दिया तो वह बेचैन हो उठा। उसने खुद दौड़-धूप मे कसर न छोड़ी। पर कुछ नतीजा न निकला। डिक खुद अटक हो आया, पर वहाँ से भी कुछ खबर न पा सका।

हम सब लोगो ने स्त्रियो के भगाये जाने और बेच दिये जाने की खबरो को याद किया, और यद्यपि इस घटना का उन विवरणो से हम पूरा मेल न मिला सके, फिर भी समझ लिया कि यह भी एक वैसी ही घटना हो गई है। यह बुड्ढा सिक्ख जरूर कोई इसी पेशे का आदमी है, न जाने कैसे ललिता को बहका ले गया।

(७)

इसके कोई महीने भर बाद की बात है। एक दिन मेरे अदालत के ही कमरे मे डिक ने आकर मुझे एक तार दिखाया। कैम्बेलपुर के कलक्टर का तार था। उक्त विवरण की लडकी के साथ एक बूढा सिक्ख गिरफ्तार किया गया है। वह गिरफ्तार करके होशङ्गाबाद ही लाया जा रहा है। लड़की ने मुझसे (कलक्टर से) बोलने से इन्कार कर दिया, इससे मै उसे समझाकर होशङ्गाबाद न भिजवा सका।

हमे बडी खुशी हुई। डिक फौरन ही कैम्बेलपुर जाने को उतावला हो उठा। पर मैने रोक दिया—

'पहले तो उसे आ जाने दो। देखो, कौन है, कौन नही।'

इसके तीसरे रोज मुझे ललिता की एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी बहुत सक्षिप्त थी। मैने अब तक ललिता की कोई चिट्ठी नही पाई, कोई मौका ही नही आया। लिखा था—

चाचाजी, पिताजी के बाद बहुत थोड़े दिन तक आपको कष्ट दिया।

इसलिए पिताजी के नाते भी और अपने निज के नाते भी, मेरा आप पर बहुत हक है। उस सबके बदले में आपसे एक बात माँगती हूँ। उसके बाद और कुछ न माँगूँगी। समझिए मेरा हक ही निबट जायगा। बाबा गिरफ्तार कर लिये गये हैं। उन्हें छुड़वाकर घर ही भिजवा दें, खर्च उनके पास न हो तो वह भी दे दें।

आपकी—

ललिता

चिट्ठी में पता नहीं था, और कुछ भी नहीं था। पर ललिता की चिट्ठी मानो ललिता ही बनकर, मेरे हाथों में काँपती-काँपती, अपना अनुनय मनवा लेना चाहती है।

अगले रोज जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझे बुलवा भेजा। वही बुड्ढा सिक्ख मेरे सामने हाजिर हुआ। आते ही धरती पर माथा टेककर गिड़-गिड़ाने लगा—

'राजाजी '

'क्यों, बुड्ढे, मैंने तुझ पर दया की और तूने शैतानी ?'

'राजाजी' और 'हुजूर' ये ही दो शब्द अदल-बदलकर उसके मुँह से निकलते रहे।

'अच्छा, अब क्या चाहता है ?'

'हुजूर, जो मर्जी।'

'मर्जी क्या, तुझे जेल होगा। काम ही ऐसा किया है।'

'हुजूर, नहीं-नहीं नहीं,—राजाजी !'

'क्यों रे, मेरी लड़की को ले भागनेवाला तू कौन था, बदमाश, पाजी।'

'नहीं-नहीं-नहीं—'

उसके बिना कहे मैं समझता जा रहा था कि वह किन्हीं विकट लाचा-रियों का शिकार बनाया गया है। लेकिन उस घटना पर जो क्षोभ मुझे भुगतना पड़ा था, वह उतारना तो चाहिए किसी पर। इसलिए उसे मैंने काफी कह-सुन लिया। फिर उसे रिहा कर देने का बन्दोबस्त कर दिया।

छूटकर वह मेरे ही घर आया।

'मालिक,—राजाजी—'

उसकी गड़बड़ गिड़गिड़ाहट में से मैंने परिणाम निकाला, वह खाली हाथ है, किराये का पैसा चाहता है, परन्तु वह घर चला जायगा, नहीं तो उससे नौकरी या मजदूरी करवा ली जाय।

मैंने उसे घर पर ही रहकर काम करने का हुक्म दिया।

डिक को मैंने सूचना दी—'वही बुड्ढा रिक्ख आ गया।' डिक ने कहा—'उसे छुड़ा लो। उसे साथ लेकर उसके गॉव चलेंगे।'

'हॉ, जरूर, अभी।'

हम दोनों बुड्ढे को साथ लेकर चल दिये। हमने देखा, बुड्ढा बिल्कुल मनहूस नहीं है। बड़प्पन के आगे तो वह निरीह दीन हो जाता है, पर अगर उससे सहानुभूति पूर्वक बोला जाय तो वह बड़ा खुशमिजाज बन जाता है। उसने सफर में तरह-तरह से हमारी सेवा की, तरह-तरह के किस्से सुनाये, लेकिन उस खास विषय पर किसी ने जिक्र नहीं उठाया। मानो वह विषय सबके हृदय के इतना समीप है कि जरा उँगली लगी तो वह कराह उठेगा।

(८)

सिन्ध घहराता हुआ बह रहा है, और हम स्लेट के पत्थरों के बीच एक पगडण्डी से चुपचाप जा रहे हैं, पैदल।

एक छोटे-से गॉव के किनारे हम आ गये। २५-३० घर होंगे। नीची छतें हैं, उनमें भी नीचे द्वार। शाम हो गई है। हरित भीमकाय उत्तुङ्ग पर्वतमालाओं की गोद में, इस प्रशान्त-सिन्ध सन्ध्या में, यह खेड़ा, इस अजय प्रवाह से बहते जाते हुए सिन्ध के किनारे, विश्व के इस एकान्त शान्त-अज्ञात और गुप-चुप छिपे हुए कोने में, मानो दुनिया की व्यर्थ व्यस्तता और कोलाहल के प्रतिवाद-स्वरूप विश्राम कर रहा है। प्रकृति स्थिर, निमग्न, निश्चेष्ट, मानो किसी सजीव राग में तन्मय हो रही है। यह खेड़ा भी मानो उसी राग (harmony) के मौन समारोह में योग दे रहा है।

इन मुट्ठी-भर मकानों से अलग टेकड़ी-सी ऊँची जगह पर एक नया-सा झोपड़ा आया और बुड्ढे ने हमें खबरदार कर दिया। बुड्ढे ने उँगली

ओठो पर रख संकेत किया, हमको यहीं, चुप ठहर जाना चाहिए। हम तीनो खड़े हो गये, मानो साँस भी रोक लेना चाहते हैं, ऐसे निस्तब्ध भाव से। नई आवाज आई।

'अभी नहीं। सबक खतम कर दो। तब चलेंगे।'

ओह! ललिता की आवाज थी। डिक का तो कलेजा ही उछलकर मुँह तक आ गया। पर हम सब ज्यों-के-त्यो खड़े रहे।

एक भारी, अनपढ़, दबी, मानो आज्ञा के बोझ मे दबी, आवाज मे सुनाई पडा—

'दिस इज ए चे—चेअर—'

'हाँ, चेअर, ठीक, चेअर। गो ऑन।'

दो-तीन ऐसे लडखडाते वाक्य और पढे गये। और इसी प्रकार उन पर दाद दी गई। फिर उसी बारीक उकसाती हुई और चाहभरी आवाज में सुन पडा—

'अच्छा, जाने दो। छोडो। चलो, दरिया चले। लेट्-स गो।'

हम ओट मे छिप रहे। दोनो निकले। ललिता और वह। वह कौन है? शकल ठीक नहीं दख पडी, पर देखा,— खूब डील-डौल का जवान है। पुट्ठे भरे हैं, चाल मे धमक है, पर सबमे सादगी है।

ललिता उसके बाये हाथ की उँगलियाँ थामे हुए थी। उन्हीं उँगलियों से खेलती चली जा रही थी।

मैंने बुड्ढे से पूछा—'वह कौन है?'

'मेरा लडका–पुरुपसिह।' शायद पुरुपसिह वह ठीक न बोल सका हो।

तब उस बुड्ढे ने कहा—'आओ, चले, देखे।'

हम चुपचाप उसके साथ चले।

सिन्ध सामने ही तो है। एक बडी-सी चट्टान के पास ऐसे खड़े हो गये कि उन दोनो की निगाहो से बचे रहे।

'यू, पोरस, वह क्या बह रहा है?—लाओगे?—ला सकते हो? कैन यू?'

'वह क्या बात?—ला।'

ऊँची धोती पर एक लम्बा-सा कुर्ता तो पहने ही था। उतारा, और उस सिन्धु के हिंस्र प्रवाह मे कूद पड़ा। लकडी का टुकड़ा था, किनारे से १५ गज दूर तो होगा, हमारे देखते-देखते ले आया।

हँसता-दौडता आया ललिता के पास। बोला—

'ले आया!—बस?—पर दूँगा नहीं।' इतना कहकर फिर उसने वह लकडी भरपूर जोर से धार मे फेक दी।

ललिता ने कहा—'यू नॉटी!'

'मै अपने को सँभाल न सका। चट्टान के पीछे से ही बोल पड़ा—'यू नाटिएस्ट !'

और बोलने के साथ ही हम तीनो उसके सामने आविर्भूत हो पडे।

'Hallo, Uncle! and, oh, Hallo you Dick! How d'ye do dear Dick? and, oh my dear father—what luck!'

कहकर उसने बुड्ढे का हाथ चूमकर पहले उसका अभिवादन किया।

'See you my Porus, Dick? King Porus history, mind you! Is he not as fair as you?' डिक का वाग्विमूढ छोड पोरस की ओर मुडकर 'इण्ट्रोडक्शन' देते हुए कहा—'My uncle मेरे चचा and that my dear friend Dick और वह डिक मेरा ख़ूब प्यारा दोस्त।'

घुटने से ऊपर लायी हुई गीली धोती और नङ्गा बदन लिये पोरस ने डिक ॲंगरेज और मुझ जज के सामने इस परिचय पर हँस दिया। मानो उसे हमारा परिचय खुशी से स्वीकार है।

रेख अभी नहीं फूटी है, बदन और चेहरा भरा-पूरा है, ऑंखे भोलेपन और खुशी से हँस रही है। मुझे यह मानव-मूर्ति स्वास्थ्य और सुख और प्रसन्नता से खिली हुई, मानो गढ़ी हुई यह प्रकृति-मूर्ति अरुचिकर न जान पडी।

'पोरस, . चाचा को सर नवाओ।'

उसने दोनों हाथ जोड़कर समस्त सिर झुका दिया।

तब डिक का हाथ बढ़ा। पोरस का हाथ 'शेक' करते हुए कहा—'पोरस

तुम राजा है। हम हारता है, और हम .खुश है।' पोरस का हाथ वैसे ही थामे हुए ललिता की ओर मुड़कर कहा, 'Lalita dear, I congratulate you on your treasure, on your victory, on your king! In truth, I do Here's my hand!' और ललिता का हाथ झकझोर दिया।

'Long live Porus, I say—and I be saved'

प्रश्नावली

१ ललिता के चरित्र की क्या विशेषता है? उसका इस गल्प पर क्या प्रभाव पड़ता है? उसके चरित्र की आलोचना कीजिए।

२ 'शायद इन शब्दों का ललिता के व्यक्तित्व से कोई सामञ्जस्य है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए और सिद्ध कीजिए कि सम्पूर्ण गल्प इसी कथन पर अवलम्बित है।

३ प्रसंग के साथ इन अवतरणों का अर्थ लिखिए,—

अ—पर इस बोलने को बीच में लाकर ही वह अपने और डिक के बीच अनुल्लङ्घनीय अन्तर डालने का उपक्रम करती रहती है।

ब—एक दूसरे को नज़दीक लाने में कलह की इन छोटी-छोटी बातों से अमोघ चीज कोई नहीं।

ग—ललिता के मुँह से निकले 'चाचा' सम्बोधन की मृदुता ने उसके प्राणों में सुख की एक लहर सी लहरा दी।

घ—उसने कहा ललिता के भारतीय वातावरण में पले होने के कारण यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वह इस सम्बन्ध में अपने अभिभावक से आज्ञा प्राप्त करे।

४. ललिता के चाचा की रीति-नीति के विषय में आपकी क्या राय है? यह ललिता के स्वभाव के अनुकूल था या नहीं?

५. तो उन (डिक) से कहिए, मैं अपने को इतनी सौभाग्यवती नहीं बना सकती। मुझ नाचीज की फिक्र छोड़ें, क्योंकि भाग्य में मुझे नाचीज़ ही बने रहकर रहना लिखा है।'

क—इस कथन का ललिता के चरित्र से सामंजस्य सिद्ध कीजिए।

ख—डिक से विवाह करने में ललिता को क्या आपत्ति थी?

६ डिक का चरित्र अंकित कीजिए।

७. इन शब्दों को अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

निश्चेष्ट, भीमकाय, औचित्य, अजेय, आविर्भूत।

मधुआ

श्री जयशंकर प्रसाद

(सन् १८८९—१९३७)

आपका जन्मस्थान काशी है। आप बड़े सहृदय, मिलनसार और निरभिमानी थे। अंग्रेजी, उर्दू और बँगला के आप अच्छे ज्ञाता थे। रहस्यवादी कवियों में आपका विशेष स्थान था। आधुनिक नाटककारों में आप सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। कहानी लेखकों में आपका उच्च स्थान है। आपकी कहानियाँ भाव प्रधान होती हैं। आप उपन्यास लिखने में भी सिद्धहस्त थे। निम्नलिखित आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

नाटक—विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त।

उपन्यास—कंकाल और तितली।

गद्य-संग्रह—आकाशदीप, प्रतिध्वनि, छाया और आँधी।

(१)

'आज सात दिन हो गये, पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवाँ दिन है सरकार।'

'तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महँक आ रही है।'

'वह... वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—अँधेरे में बोतल उँडेलने लगा। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया। और आपको कहने को... क्या कहूँ... सच मानिए, सात दिन—ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।'

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सबेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा—'तो आज पियोगे न!'

'झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबकी पीऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बिताये हैं, किस लिए।

'अद्भुत ! सात दिन पेट काटकर आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है ! यह भी '

'सरकार ! मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दु ख पूर्ण जीवन से अच्छी है । उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।'

'अच्छा आज दिन भर तुमने क्या-क्या किया ?'

'मैंने ? अच्छा सुनिए—सबेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुँआसे कम्बल-सा वह भी सूर्य के चारो ओर लिपटा था । हम दोनो मुँह छिपाये पड़े थे।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—'अच्छा तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण ?'

'सात दिन से एक बूँद भी गले मे न उतरी थी। भला मै कैसे मुँह दिखा सकता था । और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ मुँह धोने मे जो दु ख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है। पास मे पैसे बचे थे । चना चबाने से दाँत भाग रहे थे । कटकटी लग रही थी । पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेकता भी रहा । फिर गोमती-किनारे चला गया । घूमते-घूमते अँधेरा हो गया, बूँदे पडने लगी । तब कहीं भगा और आपके पास आ गया ।'

'अच्छा जो उस दिन तुमने गडरियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमे आसफुद्दौला ने उसकी लडकी का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानो के बदले मोतियो से भर दिया था, वह क्या सच है ?'

'सच ! अरे वह गरीब लडकी भूख से उसे चबाकर थू-थू करने लगी ? रोने लगी । ऐसी निर्दय दिल्लगी बडे लोग कर ही बैठते है । सुना है श्रीरामचन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसा ही '

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते-हँसते लोट गये। साँस बटोरते हुए सम्हालकर बोले—'और बडप्पन कहते किसे है ? कगाल तो कगाल ! गधी लडकी ! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी । मै सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सब मे बड़ी टीस थी। शाहजादो के दुखड़े, रग-महल की अभागिनी बेगमो के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीडा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हे आती है, पर ऐसी

हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हे अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ ।'

'सरकार ! बूढी से सुने हुए वे नवाबी के सोने-से दिन, अमीरो की रगरेलियॉ, दुखड़े की दर्द-भरी आहे, रग-महलो मे घुल-घुलकर मरनेवाली बेगमे, अपने-आप सिर मे चक्कर काटती रहती है । मै उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ । अमीर कंगाल हो जाते है । बडो-बडो के घमण्ड चूर होकर धूल मे मिल जाते है । तव भी दुनिया वडी पागल है । मै उसके पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार ! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता ।'

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे । अँगीठी मे कोयला दहक रहा था । शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था । वह हाथ सेकने लगा । सहसा नीद से चौककर ठाकुर साहब ने कहा—'अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है । वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो । लल्लू को भेजते जाओ ।'

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका । लल्लू ठाकुर साहब का जमादार था । उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की वगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कण्ठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा । वह खड़ा होकर सुनने लगा ।

'तो सुअर रोता क्यों है ? कुँवर साहब ने दो ही लात न लगाई है ! कुछ गोली तो नहीं मार दी ?'—कर्कश-स्वर मे लल्लू बोल रहा था, किन्तु उत्तर मे सिसकियों के साथ एकाध ही हिचकी सुनाई पड़ जाती थी । अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—'मधुआ ? जा सो रह ! नखरा न कर, नही तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा ! समझा न ?'

शराबी चुपचाप सुन रहा था । बालक की सिसकी और बढने लगी । फिर उसे सुनाई पड़ा—'ले अब भागता है कि नहीं ? क्यों मार खाने पर तुला है ?'

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था । शराबी ने उसके छोटे-से सुन्दर गोरे मुँह को देखा । ऑसू की बूँदे ढुलक रही थीं । बड़े दुलार से उसका मुँह पोछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया । दस

घज रहे थे। कड़ाके की सरदी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़ककर बोल उठा—

'अब क्यों रोता है रे छोकरे ?

'मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं।'

'कुछ खाया नहीं! इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन-भर तुझे खाने को नहीं मिला ?'

'यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास, मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँवर साहब का ओवर-कोट लिये खेल में दिन-भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे ? जमादार से कहने गया था !' भूख की बात कहते-कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया। वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा ढकेलकर, बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला—'तब तक तू इसे चबा, मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—

'सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोयेगा यो खूब पीटूँगा। मुझसे रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का ...'

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय दो आने की पकौड़ी नहीं नहीं आलू, मटर अच्छा, न सही। चारों आने का माँस ही ले लूँगा पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा। ओ! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं। तो क्या ले चलूँ ? पहले एक अद्धा ही ले चलूँ।'

इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूलकर मिठाई-पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उसकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँड़ेलते हुए कहा—नटखट कहीं का, हँसता है। सोंधी बास नाक में पहुँची न। ले खूब ठूँसकर खा ले और फिर रोया कि पिटा।

दोनों ने बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर-पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा—'सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा, लेकिन यह छोटा-सा रोना, पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका।'

× × ×

एक चिन्ता-पूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा, और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता, जिस पर आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी? इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है! तब क्या करूँ? कोई काम करूँ? कैसे दोनों का पेट चलेगा! नहीं, भगा दूँ इसे—आँख तो खोले।

बालक अँगड़ाई ले रहा था। वह उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले, उठ

कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख। तेरा नाम क्या है रे ?

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—मधुआ। भला हाथ-मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ। जाऊँगा कहाँ ?

'आह! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय। कह दूँ कि भाड़ में जा; किन्तु वह आज तक दुःख की भट्टी में जलता ही तो रहा है। तो वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—'ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह।'

शराबी घर से निकला। गोमती-किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था, पर कुछ भी सोच न सका। हाथ-मुँह धोने में लगा। उजली हुई धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था कि किसी ने पुकारा—

'भले आदमी रहे कहाँ ? सालों पर दिखाई पड़े। तुमको खोजते-खोजते मैं थक गया।'

शराबी ने चौंककर देखा। वह कोई जान-पहिचान का तो मालूम होता था, पर कौन है, यह ठीक-ठीक न जान सका।

उसने फिर कहा—तुम्हीं से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं है ?

'ओहो! रामजी तुम हो, भाई मैं भूल गया था। तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ।' कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी

में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नहीं ?

'भर-पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।' कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया।

शराबी एक क्षण-भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन-ही-मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ? चलूँ फिर कल लेकर सान देने का काम चलता करूँ। दोनों का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें किस्सा-कहानी, इधर-उधर की कहकर अपना काम चला ही लेता था। फिर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का। जल पीकर बोला—'क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा ?

'कहीं नहीं।'

'यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है कि मैं खोद-खोदकर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा।'

'तब कोई काम करना चाहिए।'

'करेगा ?'

'जो कहो ?'

'अच्छा तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। चल आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न ?'

'कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा।'—शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

शराबी ने मन-ही-मन कहा—बैठे-बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठायेगा ?

'जिसे कहो ।'

'अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?'

'कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी । मेरे बाप मर गये ।'

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया । बालक ने गठरी लादी । दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े ।

प्रश्नावली

१ शराबी का शराब पीना कैसे छूटा ?

२ इस कहानी का सारांश लिखिए ।

३. बालक के रोने का शराबी के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा ?

४. शराबी ने क्यों शराब पीना आरम्भ किया था ?

[५] एक आलोचक ने लिखा है 'जीवन का सत्य बहुधा वहाँ पाया जाता है जहाँ भद्र पुरुष जाते हुए भी नाक बन्द कर लेगा ।'

शराबी के चरित्र से इस कथन को आप सिद्ध कर सकते हैं ?

[६] एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दरिद्र की विभूति को देखा और देखा उस घुटने से ठुड्डी लगाये निरीह बालक को, उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की ? आह री नियति । इस छोटे-से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है ?

अ जो वाक्यांश बड़े टाइप में लिखे गये है । उनका आशय लिखो ।

ब शराबी तिलमिलाया क्यों ? इससे उसके चरित्र पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

स. 'पाजी' यहाँ शराबी के किस मनोभाव का सूचक है, स्नेह या घृणा ?

(७) निम्नलिखित अवतरणों का आशय प्रसङ्ग सहित लिखिए—

क यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ?

ख बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं ।

ग मौज बहार की एक घड़ी एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है ।

(८) इस कहानी में प्रसादजी ने अन्तस्तल के किस भाव को चित्रित करने की चेष्टा की है ? आपके विचार में वह इसमें सफल हुए या नहीं ?

पान वाली

श्री चतुरसेन शास्त्री

(सं० १९३९)

आप प्रसिद्ध वैद्य हैं। आजकल आप दिल्ली में रहते हैं। आप गद्य-काव्य-लेखकों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। आप हृदय के भावों की उथल पुथल का मनोरम चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियाँ और उपन्यास उच्चकोटि के होते हैं। आपकी भाषा मुहावरेदार होती है। आपकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—

उपन्यास—हृदय की प्यास, हृदय की परख, अमर अभिलाषा।

गल्प संग्रह—अक्षत, रजकण।

गद्य-काव्य—अन्तस्तल, प्रणाम, संदेश।

नाटक—उत्सर्ग, अमर राठौर।

लखनऊ के अमीनाबाद पार्क मे इस समय जहाँ घंटाघर है, वहाँ अब से सत्तर वर्ष पूर्व एक छोटी-सी टूटी हुई मस्जिद थी, जो भूतोवाली मस्जिद कहलाती थी, और अब जहाँ गंगा-पुस्तक-माला की आलीशान दूकान है, वहाँ एक छोटा-सा एक मंजिला घर था। चारो तरफ न आज की-सी बहार थी, न बिजली की चमक, न बढ़िया सड़कें, न मोटर, न मेम साहिबाओं का इतना जमघट।

लखनऊ के आखिरी बादशाह प्रसिद्ध वाजिदअली की अमलदारी थी। ऐयाशी और ठाट-बाट के दौर-दौरे थे। मगर इस मुहल्ले मे रौनक न थी। उस घर मे एक टूटी-सी कोठरी मे एक बुढ़िया मनहूस सूरत, सन के समान बालो को बिखेरे, बैठी किसी की प्रतीक्षा कर रही थी। घर मे एक दीया धीमी आभा से टिमटिमा रहा था। रात के दस बज गये थे। जाड़े के दिन थे, सभी लोग अपने-अपने घरो मे रजाइयो मे मुँह लपेटे पड़े थे, गली और सड़क पर सन्नाटा था।

धीरे-धीरे बढ़िया वस्त्रो से आच्छादित एक पालकी इस टूटे घर के द्वार पर चुपचाप रुकी और काले वस्त्रो से आच्छादित एक स्त्री-मूर्ति ने

बाहर निकलकर धीरे-से द्वार पर थपकी दी। तत्काल द्वार खुला और स्त्री ने घर में प्रवेश किया।

बुढि ने कहा—'खैर तो है?'

'सब ठीक है, क्या मौलवी साहब मौके पर मौजूद हैं?'

'कब के इंतजार कर रहे हैं, कुछ ज्यादा जॉफिशानी तो नही करनी पड़ी?

'जॉफिशानी? बेखुश, जान पर खेल कर लाई हूँ, करती भी क्या? गर्दन थोड़े ही उतरवानी थी।'

'होश में तो है?'

'अभी बेहोश है। किसी तरह राजी न होती थी। मजबूरन यह किया गया।'

'तब चले।'

बुढ़िया उठी। दोनो पालकी में जा बैठीं। पालकी सकेत पर चलकर मस्जिद की सीढियाँ चढ़ती हुई भीतर चली गई।

(२)

मस्जिद मे सन्नाटा और अन्धकार था, मानो वहाँ कोई जीवित पुरुष नही है। पालकी के आरोहियो को इसकी परवा न थी। वे पालकी को सीधे मस्जिद के भीतरी कक्ष मे ले गये। यहाँ पालकी रखी। बुढिया ने बाहर आकर एक कोठरी मे प्रवेश किया। वहाँ एक आदमी सिर से पैर तक चादर ओढ़े सो रहा था। बुढ़िया ने कहा—'उठिए मौलवी साहब, मुरीदो का तावीज इनायत कीजिए। क्या अभी बुखार नही उतरा?'

'अभी तो चढ़ा ही है।'—कहकर मौलवी साहब उठ बैठे। बुढ़िया ने कुछ कान मे कहा, मौलवी साहब सफेद दाढ़ी हिलाकर बोले—'समझ गया, कुछ खटका नही है। हैदर ख्वाजा मौके पर रोशनी लिये हाजिर मिलेगा। मगर तुम लोग बेहोशी की हालत मे उसे किस तरह—'

'आप बेफिक्र रहें। बस सुरग की चाभी इनायत करें।'

मौलवी साहब ने उठकर मस्जिद की बाईं ओर के चबूतरो के पीछेवाले भाग मे जाकर एक क़ब्र का पत्थर किसी तरकीब से हटा दिया। वहाँ सीढ़ियाँ निकल आईं। बुढ़िया उसी तङ्ग तहखाने के रास्ते उसी काले वस्त्र से

आच्छादित लम्बी स्त्री के सहारे एक बेहोश स्त्री को नीचे उतारने लगी। उनके चले जाने पर मौलवी साहब ने गौर से इधर-उधर देखा और फिर किसी गुप्त तरकीब से तहखाने का द्वार बन्द कर दिया। तहखाना फिर कब्र बन गया।

(३)

उन हजार फानूसों मे कसूमी बत्तियाँ जल रही थी और कमरे की दीवार गुलाबी साटन के परदो से छिप रही थी। फ़र्श पर ईरानी कालीन बिछा था, जिस पर निहायत नफ़ीस और ख़ुशरङ्ग काम बना हुआ था। कमरा ख़ूब लम्बा-चौडा था। उसमे तरह-तरह के ताज़े फूलो के गुलदस्ते सजे हुए थे और हिना की तेज़ महक से कमरा महक रहा था। कमरे के एक बाजू में मखमल का बालिश्त भर ऊँचा एक गद्दा बिछा था। उस पर एक बडी-सी मसनद लगी थी, जिस पर चार सुनहरे खम्भो पर मोती की झालर का चन्दोवा तना था।

मसनद पर एक बलिष्ठ पुरुष उत्सुकता से किन्तु अलसाया बैठा था। इसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। इसका मोती के समान उज्ज्वल रङ्ग, कामदेव को मात करनेवाला प्रदीप्त सौन्दर्य, झब्बेदार मूछे, रस-भरी आँखे और मदिरा से प्रफुल्लित होठ कुछ और ही समा बाँध रहे थे। सामने पानदान मे सुनहरी गिलोरियाँ भरी थीं। इत्रदान मे शीशियाँ लुढक रही थी। शराब की प्याली और सुराही क्षण-क्षण पर खाली हो रही थी। वह सुगन्धित मदिरा मानो उसके उज्ज्वल रग पर सुनहरी निखार ला रही थी। उसके कण्ठ में पन्ने का एक बड़ा-सा कण्ठा पडा था और उँगलियो मे हीरे की अँगूठियाँ बिजली की तरह दमक रही थीं। यही लाखो मे दर्शनीय पुरुष लखनऊ के प्रख्यात नवाब वाजिदअली शाह थे।

कमरे मे कोई न था। वह बडी आतुरता से किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह आतुरता क्षण-क्षण पर बढ़ रही थी। एकाएक एक खटका हुआ। बादशाह ने ताली बजाई और वह लम्बी स्त्री मूर्ति सिर से पैर तक काले वस्त्रों से शरीर को लपेटे मानो दीवार फाड़कर आ उपस्थित हुई।

'ओह मेरी गबरू! तुमने तो इन्तजार ही मे मार डाला। क्या गिलौ-

रियाँ लाई हो ?'

'मै हुजूर पर क़ुर्बान !' इतना कहकर उसने वह काला लबादा उतार डाला। उफ़, गज़ब ! उस काले आवेष्टन मे मानो सूर्य का तेज छिपा था। कमरा चमक उठा। बहुत बढ़िया चमकीले विलायती साटन की पोशाक पहने एक सौन्दर्य की प्रतिमा इस तरह निकल आई जैसे राख के ढेर मे से अङ्गार ! इस अमिष्ट-सौन्दर्य की रूप-रेखा कैसे बयान की जाय ? इस अँग्रेजी राज्य और अँग्रेज़ी सभ्यता मे जहाँ क्षण-भर चमककर बादलो मे विलीन हो जानेवाली बिजली, सड़क पर अयाचित ढेरो प्रकाश बखेरती रहती है, तब इस रूप-ज्वाला की उपमा कहाँ ढूँढ़ी जाय ? इस अन्धकारमय रात्रि मे यदि उसे खड़ा कर दिया जाय तो कसौटी पर स्वर्ण-रेखा की तरह दीप्त हो उठे और यदि वह दिन के उज्ज्वल प्रकाश मे खडी कर दी जाय, तो उसे देखने का साहस कौन करे ? किन आँखो मे इतना तेज है ?

उस सुगन्धित और मधुर प्रकाश मे मदिरा-रजित नेत्रो से वाजिदअली की वासना उस रूप-ज्वाला को देखते ही भड़क उठी। उन्होने कहा—'रूपा, ज़रा नजदीक आओ। एक प्याला शीराजी और अपनी लगाई हुई अम्बरी पान की बीड़ियाँ तो दो ! तुमने तो तरसा-तरसाकर ही मार डाला।'

रूपा आगे बढ़ी, सुराही से शराब उँड़ेली और जमीन मे घुटने टेककर आगे बढ़ा दी, इसके बाद उसने चार सोने के वर्क-लपेटी बीड़ियाँ निकालकर बादशाह के सामने पेश की और दस्तबस्ता अर्ज की—'हुजूर की खिदमत मे लौडी वह तोहफ़ा ले आई है।'

वाजिदअली शाह की बाछें खिल गईं। उन्होने रूपा को घूरकर कहा—'वाह ! तब तो आज ' रूपा ने सकेत किया। हैदर खोजा उस फूल-सी मुरझाई कुसुम-कली को फूल की तरह हाथो पर उठाकर—पान-गिलौरी की तश्तरी की तरह—बादशाह के रूबरू कालीन पर डाल गया। रूपा ने बाँकी अदा से कहा—'हुजूर को आदाब !' और चल दी।

(४)

एक चौदह वर्ष की, भयभीत, मूर्छित, असहाय, कुमारी बालिका अकस्मात् आँख खुलने पर सम्मुख शाही ठाट से सजे हुए महल और दैत्य के

समान नरपशु को पापवासना से प्रमत्त देखकर क्या समझेगी? कौन अब इस भयानक क्षण की कल्पना करे। वही क्षण—होश मे आते ही उस बालिका के सामने आया। वह एकदम चीत्कार करके फिर से बेहोश हो गई। पर इस बार शीघ्र ही उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। एक अतर्क्य साहस, जो ऐसी अवस्था मे प्रत्येक जीवित प्राणी मे हो जाता है, उस बालिका के शरीर मे उदय हो आया। वह सिमटकर बैठ गई और पागल की तरह चारो तरफ एक दृष्टि डालकर एकटक उस मत्त पुरुष की ओर देखने लगी।

उस भयानक क्षण मे भी उस विशाल पुरुष का सौन्दर्य और प्रभा देखकर उसे कुछ साहस हुआ। वह बोली तो नही पर कुछ स्वस्थ होने लगी।

नवाब जोर से हँस दिये। उन्होने गले का वह बहुमूल्य कण्ठा उतारकर बालिका की ओर फेक दिया। इसके बाद वह नेत्रो के तीर निरन्तर फेंकते बैठे रहे।

बालिका ने कण्ठा देखा भी नही, छुआ भी नही, वह वैसी ही सिकुड़ी हुई, वैसी ही निर्निमेष दृष्टि से भयभीत हुई नवाब को देखती रही।

नवाब ने दस्तक दी। दो बॉदियॉ दस्तबस्ता आ हाजिर हुईं। नवाब ने हुक्म दिया—इसे गुस्ल कराकर और सब्जपरी बनाकर हाजिर करो। उस पुरुष-पाषाण की अपेक्षा स्त्रियो का ससर्ग गनीमत जानकर बालिका मन्त्रमुग्ध-सी उठकर उनके साथ चली गई।

इसी समय एक खोजे ने आकर अर्ज की—खुदाबन्दा! साहब बहादुर बड़ी देर से हाजिर हैं।

'उनसे कह दो, अभी जनानखाने मे है, अभी मुलाक़ात नही होगी।'

'आलीजाह! कलकत्ते से एक जल्दी .....

'मर मुए, हमारे पीर उठ रही है।'

खोजा चला गया।

लखनऊ के खास बाजार की बहार देखने योग्य थी। शाम हो चली थी और छिड़काव हो गया था। इक्को और बहलियो, पालकियो और घोड़ो का अजीब जमघट था। आज तो उजाड अमीनाबाद का रग ही कुछ और है। तब यही रौनक़ चौक को प्राप्त थी। बीच चौक मे रूपा की पानो की दूकान

थी। फानूसो और रंगीन झाड़ों से जगमगाती गुलाबी रोशनी के बीच स्वच्छ बोतल मे मदिरा की तरह रूपा दूकान पर बैठी थी। दो निहायत हसीन लौंडियाँ पान की गिलौरियाँ बनाकर उसमे सोने का वर्क लपेट रही थीं। बीच-बीच मे अठखेलियाँ भी कर रही थी। आजकल के कलकत्ते के कोरिंथियन थिएटर रंग-मञ्च पर भी ऐसा मोहक और आकर्षक दृश्य नही देख पड़ता जैसा उस समय रूपा की दूकान पर था। ग्राहको की भीड़ का पार न था। रूपा ख़ास-ख़ास ग्राहको का स्वागत कर, पान दे रही थी। बदले मे खनाखन अशर्फ़ियो से उसकी गंगाजमुनी काम की तश्तरी भर रही थी। वे अशर्फ़ियाँ रूपा की एक अदा, एक मुस्कराहट—केवल एक कटाक्ष का मोल थी। पान की गिलौरियाँ तो लोगो को घाते मे पड़ती थीं। एक नाज़ुक-अदाज़ नवाबजादे तामजाम मे बैठे अपने मुसाहबो और कहारो के झुरमुट के साथ आये, और रूपा की दूकान पर तामजाम रोका। रूपा ने सलाम करके कहा—'मैं सदके शाहज़ादा साहिब, ज़री बाँदी की एक गिलौरी कुबूल फ़र्मावे।' रूपा ने लौंडी की तरफ इशारा किया। लौंडी सहमती हुई सोने की एक रकाबी मे ५-७ गिलौरियाँ लेकर तामजाम तक गई। शाहज़ादे ने मुसकिराकर दो गिलौरियाँ उठाई, एक मुट्ठी अशर्फ़ियाँ तश्तरी मे डालकर आगे बढे। एक खाँ साहब बालो मे मेहदी लगाये, दिल्ली के बासली के जूते पहने तनजेब की चपकन कसे, सिर पर लैसदार ऊँची टोपी लगाये आये। रूपा ने बड़े तपाक से कहा—'अस्सा ख़ाँ साहब! आज तो हुजूर रास्ता भूल गये! अरे कोई है, आपको बैठने की जगह दे। अरी गिलौरियाँ तो लाओ।'

ख़ाँ साहब रूपा के रूप की तरह चुपचाप गिलौरियो के रस का घूँट पीने लगे। थोड़ी देर मे एक अधेड़ मुसलमान अमीरज़ादे की शक्ल मे आये। उन्हे देखते ही रूपा ने कहा—अरे हुजूर तशरीफ ला रहे है। मेरे सरकार, आप तो ईद के चाँद हो गये। कहिए, खैराफ़ियत है? अरी, मिर्ज़ा साहब को गिलौरियाँ दीं?' तश्तरी मे खनाखन हो रही थी और रूपा की रूप और पान की हाट खूब गरमा रही थी। ज्यो-ज्यो अन्धकार बढ़ता जाता था, त्यों-त्यो रूप पर रूपा की दुपहरी चढ़ रही थी। धीरे-धीरे एक पहर रात बीत गई। ग्राहकों की भीड़ कुछ कम हुई। रूपा अब सिर्फ़ कुछ चुने हुए प्रेमी

ग्राहकों से घुल-घुलकर बातें कर रही थी। धीरे-धीरे एक अजनबी आदमी दूकान हर आकर खड़ा हो गया। रूपा ने अप्रतिभ होकर पूछा।

'आपको क्या चाहिए?'

'आपके पास क्या-क्या मिलता है ?'

'बहुत-सी चीजें। क्या पान खाइएगा ?'

'क्या हर्ज है ?'

रूपा के सकेत से दासी बालिका ने पान की तश्तरी अजनबी के आगे धर दी।

दो बीड़ियाँ हाथ मे लेते हुए उसने कहा—'इनकी कीमत क्या है बी साहबा !'

'जो कुछ जनाब दे सके।'

'यह बात है। तब ठीक, जो कुछ मै ले सका, वह लूँगा भी !' अजनबी हँसा नहीं। उसने भेदभरी दृष्टि से रूपा को देखा।

रूपा की भृकुटी जरा टेढ़ी पड़ी और वह एक बार तीव्र दृष्टि से देखकर फिर अपने मित्रों के साथ बातचीत मे लग गई। पर बातचीत का रग जमा नहीं। धीरे-धीरे मित्रगण उठ गये। रूपा ने एकान्त पाकर कहा—

'क्या हुजूर का मुझसे कोई खास काम है ?'

'मेरा तो नहीं, मगर कम्पनी बहादुर का है।'

रूपा काँप उठी। वह बोली—'कम्पनी बहादुर का क्या हुक्म है ?'

'भीतर चलो तो कहा जाय।'

'मगर माफ कीजिए—आप पर यकीन कैसे ?'

'ओह ! समझ गया। बड़े साहब की यह चीज तो तुम शायद पहचानती ही होगी ?

यह कहकर उन्होने एक अँगूठी दूर से दिखा दी।

'समझ गई। आप अन्दर तशरीफ लाइए।'

रूपा ने एक दासी को अपने स्थान पर बैठाकर अजनबी के साथ दूकान के भीतरी कक्ष में प्रवेश किया।

दोनो व्यक्तियो मे क्या बाते हुईं, यह तो हम नहीं जानते, मगर उसके ठीक तीन घण्टे बाद दो व्यक्ति काला लबादा ओढ़े दूकान से निकले और किनारे लगी हुई पालकी मे बैठ गये। पालकी धीरे-धीरे उसी भूतोवाली मस्जिद मे पहुँची। उसी प्रकार मौलवी ने क़ब्र का पत्थर हटाया और एक मूर्ति ने क़ब्र के तहख़ाने मे प्रवेश किया। दूसरे व्यक्ति ने एकाएक मौलवी का पटककर मुश्कें बाँध ली और एक संकेत किया। क्षणभर मे ५० सुसज्जित काली-काली मूर्तियाँ आ खड़ी हुईं और बिना एक शब्द मुँह से निकाले चुपचाप क़ब्र के अन्दर उतर गईं।

(६)

अब फिर चलिए अनगदेव के उसी रग मन्दिर मे। सुख-साधनो से भरपूर वही यह कक्ष आज सजावट खतम कर गया था। सहसा उल्कापात की तरह रगीन हाँडियाँ, बिल्लौरी फ़ानूस और हजारा झाड़ सब जल रहे थे। तत्परता से किन्तु नीरव बाँदियाँ और गुलाम दौड़-धूप कर रहे थे। अनगिनत रमणियाँ अपने मदभरे होठो की थालियो मे भाव की मदिरा उँडेल रही थीं। उन सुरीले रागो की बौछारो मे बैठे बादशाह वाजिद अली शाह सराबोर हो रहे थे। उस गायनोन्माद मे मालूम होता था, कमरे के जड़ पदार्थ भी मतवाले होकर नाच उठेंगे। नाचनेवालियो के ठुमके और नूपुर की ध्वनि सोते हुए यौवन से ठोकर मारकर कहती थी—'उठ, उठ, ओ मतवाले उठ।' उन नर्तकियो के बढ़िया चिकनदोज़ी के सुवासित दुपट्टो से निकली हुई सुगन्ध उनके नृत्यवेग से विचलित वायु के साथ घुल-मिलकर ग़दर मचा रही थी। पर सामने का सुनहरी फ़व्वारा, जो सामने स्थिर ताल पर बीस हाथ ऊपर फेककर रंगीन जलबिन्दु-राशियो से हाथापाई कर रहा था, देखकर कलेजा बिना उछले कैसे रह सकता था!

उसी मसनद पर बादशाह वाजिदअलीशाह बैठे थे। एक गंगाजमनी काम का अलबोला वहाँ रखा था, जिसकी ख़मीरी मुश्की तम्बाकू जलकर एक अनोखी सुगन्ध फैला रही थी। चारो तरफ़ सुन्दरियो का झुरमुट उन्हे घेरे बैठा था। सभी अधनङ्गी, उन्मत्त, निर्लज्ज हो रही थी। पास ही सुराही और थालियाँ रखीं थीं और बारी-बारी से उन दुर्बल होठो को चूम रही थीं।

आधा मद पी-पीकर वे सुन्दरियाँ उन प्यालियों को बादशाह के होठों में लगा देती थीं। वह आखें बन्द करके उसे पी जाते थे। कुछ सुन्दरियाँ पान लगा रही थीं, कुछ अलबोले की निगाली पकड़े हुई थीं। दो सुन्दरियाँ दोनों तरफ पीकदान लिये खड़ी थीं, जिनमें बादशाह कभी पीक गिरा देते थे।

इस उल्लसित आमोद के बीचों बीच एक मुर्झाया हुआ पुष्प—कुचली हुई पान की गिलौरी—वही बालिका—बहुमूल्य हीरेखचित वस्त्र पहने—बादशाह के बिलकुल पास में लगभग मूर्छित और अस्त-व्यस्त पड़ी थी। रह-रहकर शराब की प्याली उसके मुख से लग रही थी और वह खाली कर रही थी। एक निर्जीव दुशाले की तरह बादशाह उसे अपने बदन से सटाये मानो अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस में शराबोर कर रहे थे। गम्भीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द-वर्षा में बिजली गिरी। कक्ष के उसी गुप्त द्वार को विदीर्ण कर क्षण-भर में वही रूपा काले आवरण से नखशिख ढके निकल आई। दूसरे क्षण में एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्टन में बाहर निकल आई। क्षण भर बाद दोनों ने अपने आवेष्टन उतार फेंके। वही अग्निशिखा ज्वलन्त रूपा और उसके साथ गौराङ्ग कर्नल।

नर्तकियों ने एकदम नाचना-गाना बन्द कर दिया। बाँदियाँ शराब की प्यालियाँ लिये काठ की पुतली की तरह खड़ी-की-खड़ी रह गईं। केवल फव्वारा ज्यों-का-त्यों आनन्द से उछल रहा था। बादशाह यद्यपि बिलकुल बदहवास थे, मगर यह सब देखकर वह मानो आधे उठकर बोले—'ओह! रूपा-दिलरुबा! तुम और ऐ मेरे दोस्त कप्तान—इस वक्त यह क्या माजरा है?'

आगे बढ़कर और अपनी चुस्त पोशाक ठीक करते हुए तलवार की मूठ पर हाथ रख कप्तान ने कहा—'कल आलीजाह की बन्दगी में हाजिर हुआ था, मगर '

'ओफ्! मगर—इस वक्त इस रास्ते से? ऐ माजरा क्या है? अच्छा बैठो, हां, जोहरा, एक प्याला मेरे दोस्त कर्नल के '

'माफ करें हुजूर! इस समय मैं एक काम से सरकार की खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।'

'काम! वह काम क्या है?'—बैठते हुए बादशाह ने कहा।

'मैं तखलिए मे अर्ज किया चाहता हूँ।'

'तखलिया! अच्छा, अच्छा, जोहरा! ओ कादिर!'

धीरे-धीरे रूपा को छोड़कर सभी बाहर निकल गईं। उस सौन्दर्यस्वप्न मे रह गई अकेली रूपा। रूपा को लक्ष्य करके कहा—'यह तो ग़ैर नहीं।' रूपा! दिलरुबा! एक प्याला अपने हाथो से दो तो।' रूपा ने सुराही से उँड़ेल लबालब प्याला भरकर बादशाह के होठो से लगा दिया। हाय! लखनऊ के नवाब का यही अन्तिम प्याला था। उसे बादशाह ने आँखे बन्द कर पीकर कहा 'वाह प्यारी।'

'हाँ, तो अब वह बात! मेरे दोस्त'

'हुजूर को जरा रेजिडेसी तक चलना पड़ेगा।'

'बादशाह ने उछलकर कहा—'ऐ, यह कैसी बात! रेजिडेसी तक मुझे!'

'जहाँपनाह, मैं मजबूर हूँ, काम ऐसा ही है?'

'इसका मतलब?'

'मैं अर्ज नहीं कर सकता। कल मैं यही तो अर्ज करने हाजिर हुआ था।'

'ग़ैर मुमकिन! ग़ैर मुमकिन?' बादशाह ग़ुस्से मे होठ काटकर उठे। और अपने हाथ से सुराही से उँड़ेलकर ३-४ प्याले पी गये। धीरे-धीरे उसी दीवार से एक-एक करके चालीस गोरे सैनिक सङ्गीन और किर्च सजाये कक्ष मे घुस आये।

बादशाह देखकर बोले—'खुदा की कसम, यह तो दगा है। कादिर!'

'जहाँपनाह, अगर ख़ुशी से मेरी अर्जी कबूल न करेंगे, तो ख़ूनख़राबी होगी। कम्पनी बहादुर के गोरों ने महल घेर लिया है। अर्ज यही है कि सरकार चुपचाप चले चले।'

बादशाह धब से बैठ गये। मालूम होता है, क्षणभर के लिए उनका नशा उतर गया। उन्होंने कहा—'तुम तब क्या मेरे दुश्मन होकर मुझे कैद करने आये हो?'

'मैं हुजूर का दोस्त हर तरह हजूर के आराम और फ़रहत का ख्याल रखता हूँ, और हमेशा रखूँगा।'

बादशाह ने रूपा की ओर देखकर कहा 'रूपा! रूपा!' यह कय

माजरा है ? तुम भी क्या इस मामले में हो ? एक प्याला—मगर नहीं, अब नहीं। अच्छा—सब साफ-साफ सच कहो। कर्नल मेरे दोस्त—नहीं, नहीं' अच्छा कर्नल। सब खुलासावार बयान करो।'

'सरकार, ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता। कम्पनी बहादुर का खास परवाना लेकर खुद लाट साहब तशरीफ़ लाये हैं और आलीजाह से कुछ मशविरा किया चाहते हैं।'

'मगर यहाँ ?'

'यह नामुमकिन है।'

बादशाह ने कर्नल की तरफ देखा। वह तना खड़ा था और उसका हाथ तलवार की मूठ पर था।

'समझ गया, सब समझ गया। यह कहकर बादशाह कुछ देर हाथों से आँख ढाँपकर बैठ गये। कदाचित् उनकी सुन्दर रसभरी आँखों में आँसू भर आये हों।

रूपा ने पास आकर कहा—'मेरे खुदावन्द, ब दी....'

'हट जा, ऐ नमकहराम, रजील, बाजारू औरत।'

बादशाह ने यह कहकर एक ठोकर लगाई और कहा—'तब चलो, मैं चलता हूँ, खुदा हाफिज।'

पहले बादशाह, पीछे कप्तान, उसके पीछे रूपा, और सबके अन्त में एक-एक करके सिपाही उसी दरार में विलीन हो गये। महल में किसी को कुछ मालूम न था। वह मूर्तिमान् सङ्गीत—वह उमड़ता हुआ आनन्द-समुद्र सदा के लिए मानो किसी जादूगर ने निर्जीव कर दिया।

(७)

कलकत्ते के एक उजाड़-से भाग में एक बहुत विशाल मकान में वाजिदअली शाह, नजरबन्द थे। ठाट लगभग वही था। सैकड़ों दासियाँ, बाँदियाँ और वेश्याएँ भरी हुई थीं, पर वह लखनऊ का रङ्ग कहाँ ?

खाना खाने का वक्त हुआ, और दस्तरखान पर खाना चुना गया, तो बादशाह ने चख-चखकर फेंक दिया। अँगरेज अफ़सर ने घबड़ाकर पूछा—'खाने में क्या नुक्स है ?'

जवाब दिया गया—'नमक खराब है।'

'नवाब कैसा नमक खाते हैं ?'

'एक मन का डला रखकर उस पर पानी की धार छोड़ी जाती है। जब घुलते-घुलते छोटा-सा टुकड़ा रह जाता है तब बादशाह के खाने मे वह नमक इस्तेमाल होता है।

अँगरेज अधिकारी मुसकराता चला गया। क्यो ? ओह ! हम लोगो के समझने के योग्य यह भेद नही।

उसी रसरङ्ग की दीवारो के भीतर अब सरकारी दफ्तर खुल गये है और यह अमर केसर बाग मानो ठूँठ की तरह खड़ा उस रसीली रात की याद मे सिर धुन रहा है।

प्रश्नावली

१ वाजिदअली शाह का चरित्र-चित्रण करो।
२ रूपा कौन थी ?
३ रङ्गमहल के गुप्त-द्वार का पता अगरेजों ने किस प्रकार लगाया ?
४ इस कहानी का शीर्षक पानवाली क्यों रखा गया है ?
५ इस कहानी के पढ़ने से भारत की स्थिति पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

साम्राट् का स्वत्व

श्री राय कृष्णदास

(स० १९५९)

आपका जन्मस्थान काशी है। आप ललित-कलाओं के प्रेमी और मर्मज्ञ हैं। इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है—काशी का भारत कला-भवन।

आप भावुक कवि हैं, गद्य-काव्य लेखक हैं, साथ ही उत्कृष्ट कहानी लेखक भी हैं। आपकी रचनाओं में दार्शनिक विचारों का पुट रहता है। आपकी कहानियाँ भाव-प्रधान होती हैं। भाषा संस्कृतगर्भित रहती है, पर व्यावहारिक भाषा का भी जहाँ-तहाँ बड़ा सुन्दर प्रयोग मिलता है।

आपकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—

कविता—भावुक।

गल्प संग्रह—अनाख्या, सुधांशु।

गद्यकाव्य—साधना, छायापथ, प्रवाल सलाप।

'एक वह और एक मैं। किन्तु मेरा कुछ भी नहीं। इस जीवन में कोई पद नहीं। वह समस्त साम्राज्य पर निष्कटक राज्य करे और मुझे एक-एक कौडी के लिए उसका मुँह देखना पड़े। जिस कोख में उसने नौ महीने बिताये है, मै भी उसी कोख से पैदा हुआ हूँ। जिस स्तन ने शैशव में उसका पालन किया, उसी स्नेह का मैं भी पूर्ण अधिकारी था। पिता की जिस गोद मे वह बैठकर खेला है, मैने भी उसी गोद मे ऊधम मचाया है। हम दोनो एक ही माता-पिता के समान स्नेह और वात्सल्य के भागी रहे है। हम लोगो की बाल्यावस्था बराबरी के खेल-कूद और नटखटी मे बीती है। हम लोगो ने एक ही साथ गुरु के यहाँ एक ही पाठ पढा और याद किया। एक के दोप को दूसरे ने छिपाया। एक के लिए दूसरे ने मार खाई। संग मे जगल-जंगल शिकार के पीछे मारे-मारे फिरे। भूख लगने पर एक कौर मे से आधा मैने खाया, आधा उसने। तब किसी बात का अन्तर न था—एक प्राण दो शरीर थे।

'पर आज समय ही तो है। वह सिहासन पर बैठकर आज्ञा चलाये, मैं उसके सामने भेंट लेकर नत होऊँ। कुत्ते के टुकडे की तरह जो कुछ वह फेक दे, सो मेरा। नहीं तो पिता-पितामह की, माता-प्रमाता की, पूर्वजो की इस विशाल सम्पत्ति पर मेरा बाल भर भी अधिकार नहीं। आह! दैव-दुर्विपाक! एक छोटे-से-छोटे कारबारी के इतना भी मेरा अधिकार नहीं। पूर्व-महाराज की मुझ औरस सतान का कोई ठिकाना नही। क्यो, इसी सयोगमात्र से कि मैं छोटा हूँ और वह बडा। ओह! यदि आज मैं वणिक पुत्र होता, तो भी पैतृक-सम्पत्ति का आधा भाग उसकी नाक पकड़कर रखवा लेता। किन्तु धिक्कार है मेरे क्षत्रिय-कुल मे जन्मने पर कि मैं दूर्वा की तरह प्रतिक्षण पद-दलित होकर भी जीवित रहूँ। हरा-भरा रहूँ। 'राजकुमार' कहा जाऊँ—'छोटा महाराज' कहा जाऊँ। खाली घडे के शब्द की तरह, रिक्त बादल की गरज की तरह कोरा अभिमान कि इधर से उधर टकर खाता फिरूँ। शिवनिर्माल्य की तरह किसी अर्थ का न रहूँ। अपने ही घर मे, अपने ही माता-पिता के आँगन मे अनाथ की तरह ठोकर खाता फिरूँ।

बिकर के पिंड की तरह फेका जाऊँ। आह! यह स्थिति असह्य है। मेरा क्षत्रिय-रक्त तो इसे एक क्षण भर भी सहन नही कर सकता। चाहे जैसे हो इससे छुटकारा पाना होगा। या तो मै नहीं या यह स्थिति नहीं। देखूँ किसकी तजी होती है।

'एक क्षण का तो काम है। एक प्रहार से उसका अन्त होता है। किन्तु क्या कायरो की तरह धोखे में प्रहार। प्रताप के लिए तो यह काम होने का नहीं, यह तो चोरो का काम है! दस्युओ का काम है! हत्यारो की वृत्ति है!'

कुमार प्रतापवर्धन का चेहरा तमतमाया हुआ था। ओठ फड़क रहे थे। नस-नस मे तेजी से ख़ून दौड रहा था। मारे क्रोध से उसके पैर ठिकाने नहीं पड़ते थे। सध्या का शीतल समीर उसके उष्ण शरीर से टकराकर भस्म-सा हुआ जाता था। कुमार को बोध होता था कि सारा प्रासाद भूकम्प से ग्रस्त है। अनेकानेक प्रेत-पिशाच उसे उखाडे डालते हैं। क्षितिज में संध्या की लालिमा नही है, भयकर आग लगी हुई है। प्रलय-काल मे देर नहीं।

जिस प्रकार ज्वालामुखी के लावा का प्रवाह आँख मूँदकर दौड़ पडता है, उसे ध्वस्त करता चलता है, उसी प्रकार राजकुमार का मानसिक आवेश भी अन्धा होकर दौड़ रहा था।

'क्यो प्रताप, आज अकेले ही यहाँ क्यो टहल रहे हो?'

अचानक पीयूषवर्षा हो उठी। राजकुमार की ओर उसकी भाभी-महारानी—चली आ रही थीं। महारानी का प्रताप पर भाई जैसा प्रेम, मित्र-जैसा स्नेह, और पुत्र-जैसा वात्सल्य था। राजकुमार उसके सामने आते ही बालक-जैसे हो जाते। पर इस समय वे कुछ न बोले। महारानी ने फिर प्रश्न किया, पर राजकुमार अवाक् थे। कुछ क्रोध के कारण नहीं, महारानी के शब्द कान मे पड़ते ही उनके हृदय को भीषण धक्का लगा था। क्रोध मे भारी प्रतिघात हुआ था। और राजकुमार के लिए उस प्रतिघात को सहना असम्भव था। यदि प्रतप्त अगार औचक शीतल पानी में पड़ जाय तो शतधा फट जाता है। उसी तरह उनके हृदय की दशा हो रही थी। और जब महिषि ने तीसरी बार प्रश्न किया, तब प्रताप बच्चो की तरह रो पड़ा।

राजमहिषी इस गोरखधन्धे को जरा भी न समझ सकीं। उन्होने फिर

कोमलता से पूछा—'बोलो प्रताप, आज क्या बात है—तुम पर ऐसा कौन कष्ट पड़ा कि तुम रो रहे हो, मैंने तो कभी तुम्हारी ऐसी दशा न देखी थी। आज दोनो भाइयो मे झगड़ा तो नही हुआ ?'

प्रताप के आँसुओ की झडी ज्यो-की-त्यो जारी थी। कष्ट से हिचकियाँ लेते-लेते उसने उत्तर दिया, पर वे समझ न सकीं।

कुमार का हाथ अपने हाथ से थाम कर दूसरा हाथ पीठ पर फेरते हुए वे बोलीं—'शान्त हो, प्रताप! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है ? चलो तुम्हारा उनका मेल करा दूँ।'

राजमहिषी ने समझा कि इसके सिवा अन्य कोई कारण नही है। प्रताप ने बडी कठिनता से अपने आपको सँभालकर कहा—'भला मै किस बल पर भाई का सामना करूँगा ?'

'प्रताप, ऐसी कटु बात न कहो। तुम्हे स्नेह का बल है, स्वत्व का बल है। इससे बढ़कर कौन बल हो सकता है ? बोलो क्या कारण है? कहो, मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा है।'

महारानी का कठ रुँध गया था, उनकी आँखे भर आई थी।

'कुछ नही भाभी! मन ही तो है। यो ही कुछ बीते दिनो की याद आ गई। स्नेहमयी माता नही, पर तुम तो हो। अब तक मैं निरा बच्चा ही बना हुआ था। बस, यह बचपन की एक तरग थी।'

'नहीं प्रताप, तुम्हे मेरी शपथ है, मुझे अपना दु ख सुना दो। चाहे तुम्हारा हृदय ऐसा करने से हलका न हो, पर मेरा हृदय अवश्य हलका हो जायगा।'

प्रताप ने उदासीन मुस्कराहट, छूछी हँसी हँसते हुए कहा—'कुछ नहीं भाभी, कुछ हो तब तो! सध्या की उदासी, निराली अटारी, मन में कुछ सनक आ गई थी। अब कुछ नही। चलिए, आज हम लोग घूमने चलेंगे ?'

'प्रताप, तुम टाल रहे हो। इसमे मुझे दु ख होता है। आज तक तुमने मुझसे कुछ छिपाया नही। जो दु ख-सुख हुआ, सब कहा। आज यह नयी बात क्यो ?'

प्रताप फिर बच्चो की तरह सिसकने लगा। उसने महिषी के चरणो की धूलि सिर पर लगा ली।

'भाभी तुम्हारा बच्चा ही ठहरा, कहूँ नही तो काम कैसे चले। कहूँगा, सब कहूँगा। पर क्षमा करो। इस समय चित्त ठिकाने नही है। फिर पूछ लेना।'

'अच्छा घूमने तो चलो।'

'नही, इस समय मुझे अकेले छोड़ दो भाभी।'

'क्यो तुम्ही ने अभी प्रस्ताव किया था न?'

'भाभी, वह कपट था।'

'प्रताप, तुम—और मुझसे कपट करो! कुमार, मैं इसे देवताओ की अकृपा के सिवा और क्या कहूँ, अच्छा जाती हूँ। किन्तु देखो, तुम्हे अपना हृदय मेरे सामने खोलना पड़ेगा।'

रानी भी रोती-रोती चली गई। राजकुमार रिक्त दृष्टि से उसका जाना देखता रहा। फिर वह खडा न रह सका, वही अटारी के मुँडेरे पर बैठ गया।

महारानी ने देखा कि सम्राट् उद्यान मे खड़े है। रथ तैयार है। उन्होंने भी महारानी को अकेली आते देखा—उसका उतरा हुआ मुँह देखा, लट-पटाती गति देखी। हृदय मे एक धक्-सी हो गई। पूछ बैठे—

'क्यो प्रताप कहाँ है? और तुम्हारी यह क्या दशा है?'

'कुछ नही'—महिषी ने भर्राये स्वर से कहा—'चलिए घूमने।'

'आज वह न चलेगा? बात क्या है, कुछ कहो तो?'—महाराज ने रूखे स्वर से पूछा।

भृत्यवर्ग स्तम्भित था, चकित था। हाथ बाँधे हुए खड़ा तो था, पर हृदय मे काँप रहा था—क्या होने को है?

राजमहिषी ने महाराज के निकट जाकर धीरे-धीरे कुछ बाते की।

महाराज ने कहा—'यह सब कुछ नहीं, चलो प्रताप से एक बार मैं तो बाते कर लूँ।'

× × ×

प्रताप और महाराज आमने-सामने थे। प्रताप की आँखें भूमि देख रही थी। किन्तु भौंहे तन उठी थीं। महाराज हिमालय की तरह शान्त थे। उन्होने जिज्ञासा की—

'भाई प्रताप, आज कैसे हो रहे हो?'

किन्तु कुमार ने कोई उत्तर न दिया।

सम्राट् ने उनका हाथ थाम लिया और स्नेह से उसे सहलाने लगे। प्रताप के शरीर मे एक झल्लाहट-सी होने लगी। विरक्ति और घृणा से। क्रोध ने कहा कि एक झटका दो हाथ छुड़ा लो। साहस भी था। पर भ्रातृभाव ने यह नौबत न आने दी। तो भी प्रताप ने कोई उत्तर न दिया।

'प्रताप, न बोलोगे ? हम लोगो के जन्म-जन्म के स्नेह की तुम्हे शपथ है जो मौन रहो।

'भैया'—यहाँ प्रताप का गला रुक गया। बड़ी चेष्टा करते हुए उसने कहा—'अब स्नेह नहीं रह गया।'

'क्यो, क्या हुआ ?' महाराज उस उत्तर से कुछ चकित हो गये।

'भैया—क्षत्रिय-रक्त ने जोर किया और नदी का बाँध टूट गया—' प्रताप ने वयस्क होने के बाद पहली बार भाई से आँखे मिलाकर कहना शुरू किया—'जिस जीवन की कोई हस्ती न हो, वह व्यर्थ है। हम दोनो सगे भाई है तो भी—मै कोई नहीं और आप चक्रवर्ती। यह कैसे निभ सकता है ?'

'तो लो तुम्ही शासन चलाओ प्रताप !'

महाराज ने अपना खड्ग प्रताप की ओर बढा दिया।

प्रताप ने इस स्थिति की स्वप्न मे भी कल्पना न की थी। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। महाराज साग्रह उसके हाथ में खड्ग देने लगे और वह पैरो पड़ने के सिवा कुछ न कर सका। तब महाराज ने उसे छाती से लगा लिया और समुद्र के से गम्भीर स्वर मे कहने लगे—

'सुनो प्रताप, सम्राट् राष्ट्र की एक व्यक्ति मे केन्द्रित सत्ता है। भाई हो अथवा बेटा कोई उसे बाँट नहीं सकता। यह वैभव देखकर न चकपकाओ। राष्ट्र ने अपनी महत्ता दिखाने के लिए और उसे स्वयं प्रभावान्वित होने के लिए इस वैभव को—इन अधिकारो को, राजा से सम्बद्ध किया है। ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नहीं। यहाँ तराजू की कमाई नहीं है जो तौलकर जुटती और तौलकर ही बँटती भी है। यह है शक्ति की कमाई, और वह शक्ति क्या है ? कच्चे सूत हाथी को बाँध लेते हैं, किन्तु कब ? जब एक मे मिलकर वे रस्सी बन जाते है, तब। हाँ, कौटुम्बिक

जीवन मे यदि हम-तुम दो हो तो मै अवश्य दंडनीय हूँ। समझे भाई !'

इसी समय राजमहिषी मुस्कराती हुई महाराज से कहने लगीं—'नाथ, इसे लक्ष्मी चाहिए, लक्ष्मी—आप समझे कैसी—गृहलक्ष्मी।'

कुमार लज्जित हो गया। फिर वह हँसता हुआ सम्राट्-सम्राज्ञी दोनों सम्बोधित कर कहने लगा—

'क्या समय बिता के ही घूमने चलिएगा ?'

प्रश्नावली

१—प्रतापवर्धन के आवेश का कारण क्या था और उसकी शान्ति कैसे हुई ?

२—राजमहिषी की बातों का प्रताप के हृदय पर क्या असर पड़ा ?

३—सम्रा का स्वत्व क्या है ?

४—निम्नलिखित वाक्यों का अर्थ स्पष्ट कीजिए :—

(क) यह तराजू की कमाई नहीं है जो तौलकर ही जुटती और तौलकर ही बँटती है ?

(ख) क्षत्रिय-रक्त ने जोर किया और नदी का बाँध टूट गया।

५—इस कहानी के मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

पछतावा

श्री प्रेमचन्द

(सं० १९३७—१९९३)

आपका जन्म काशी के पास मढवाँ नामक गाँव में हुआ। आपका असली नाम धनपत राय है। आप पहले उर्दू में शिक्षा पाते थे। सन १९१६ से आपने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। आपकी परिमार्जित लेखनी द्वारा नि.सृत कहानियों और उपन्यासों की धूम मच गयी। हिन्दी प्रेमियों ने आपके उपन्यासों पर मुग्ध होकर आपको 'उपन्यास-सम्राट्' की पदवी से विभूषित किया।

आपकी कहानियों में चरित्र-चित्रण और मानसिक भावों का विश्लेषण अत्यन्त सुन्दर होता है। आपकी भाषा सीधी-सादी और सुगठित होती है। आपके

वर्णनों में स्वाभाविकता रहती है। आप वर्ण्य विषय की सजीव प्रतिमा खड़ी कर देते हैं। आपकी मुख्य कृतियाँ ये हैं—

उपन्यास—प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रङ्गभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मङ्गलसूत्र।

नाटक—संग्राम, प्रेम की वेदी, कर्बला।

गल्प संग्रह—नवनिधि, सप्तसरोज, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमपच्चीसी, प्रेमतीर्थ, प्रेमद्वादशी, प्रेरणा, प्रेमानसरोवर आदि।

पण्डित दुर्गानाथ जब कालेज से निकले तो उन्हे जीवन-निर्वाह की चिन्ता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणत सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरो के साथ भलाई और सदाचरण का भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालय मे क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है, किन्तु सर्वसाधारण से कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालत में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनो बाते सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपने को पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस-विभाग मे दीनपालन और परोपकार के लिए बहुत-से अवसर मिलते रहते हैं, किन्तु एक स्वतंत्र और सद्विचारप्रिय मनुष्य के लिए वहाँ की हवा हानिप्रद है। शासन-विभाग मे नियम और नीतियो की भरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कड़ाई और डाँट-डपट से बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होने निश्चय किया कि किसी जमींदार के यहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा, किन्तु दीन खेतिहरो से रात-दिन सम्बन्ध रहेगा—उनके साथ सद्व्यवहार का अवसर मिलेगा। साधारण जीवन-निर्वाह होगा और विचार दृढ़ होगे।

कुँवर विशालसिंहजी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। पंडित दुर्गानाथ ने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे अपनी सेवा मे रखकर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहब ने इन्हे सिर से पैर तक देखा और कहा—पण्डितजी, आपको अपने यहाँ रखने मे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नही देख पड़ता।

दुर्गानाथ ने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नहीं है। मैं हर एक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नता पूर्वक देंगे, मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह सकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईस के और किसी की नौकरी न करूँगा।

कुँवर विशालसिंह ने अभिमान से कहा—रईस की नौकरी नौकरी नहीं, राज्य है। मैं अपने चपरासियो को दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तजेब के अँगरखे पहनकर निकलते है। उनके दरवाजो पर घोडे बँधे हुए हैं। मेरे कारिन्दे पॉच रुपये से अधिक नहीं पाते, किन्तु शादी-विवाह वकीलो के यहॉ करते हैं। न जाने उनकी कमाई मे क्या बरकत होती है। बरसो तनख्वाह का हिसाब नही करते। कितने ऐसे है जो बिना तनख्वाह के कारिन्दगी या चपरासगिरी को तैयार बैठे है। परन्तु अपना यह नियम नही। समझ लीजिए, मुख्तार-आम अपने इलाके मे एक बड़े जमींदार से भी अधिक रोब रखता है। उसका कारबार, उसकी हुकूमत छोटे-छोटे राजाओ से कम नही। जिसे इस नौकरी का चस्का लग गया है, उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पण्डित दुर्गानाथ ने कुँवर साहब की बातो का समर्थन किया, जैसा कि करना उनके सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारी मे अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अब तक किसी रईस की नौकरी का चसका नहीं है। मैं तो अभी कालेज से निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणो से नौकरी करना चाहता हूँ, जिन्हें आपने वर्णन किया। किन्तु इतने कम वेतन मे मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियो का गला दबाते होंगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य न होगे। यदि सच्चे नौकर का सम्मान निश्चय है, तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।

कुँवर साहब ने बड़ी दृढ़ता से कहा—हॉ, यह तो निश्चय है कि सत्य-वादी मनुष्य का आदर सब कहीं होता है। किन्तु मेरे यहॉ तनख्वाह अधिक नहीं दी जाती।

जमींदार के इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तर को सुनकर पण्डितजी कुछ खिन्न हृदय से बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको

पहुँचा हो तो क्षमा कीजिएगा। किन्तु मै आपसे यह कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवर साहब ने मन मे सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत-कचहरी लगी ही रहती है। सैकड़ो रुपये तो डिगरी-तजवीजो तथा और अँगरेजी कागजो के अनुवाद न लग जाते हैं। एक अँगरेजी का पूर्ण पण्डित सहज ही मे मुझे मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पण्डितजी की बात का उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्य को कितना ही कम वेतन दिया जाये, किन्तु सत्य को न छोड़ेगा और न अधिक वेतन पाने से बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाई का रुपये से कुछ सम्बन्ध नहीं। मैने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े-बड़े धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मै आपको एक इलाके का अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरक्की भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजी ने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ से कोई ढाई मील पर कई गाँवों का एक इलाका चाँदपार के नाम से विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाके के कारिन्दे नियत हुए।

(२)

पण्डित दुर्गानाथ ने चाँदपार इलाके मे पहुँचकर अपने निवासस्थान को देखा, तो उन्होने कुँवर साहब के कथन को बिल्कुल सत्य पाया। यथार्थ मे रियासत की नौकरी सुख-सम्पत्ति का घर है। रहने के लिए सुन्दर बँगला है, जिसमे बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ो बीघे की सीर, कई नौकर-चाकर, कितने ही चपरासी, सवारी के लिए एक सुन्दर टाँगन, सुख और ठाट-बाट के सारे सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकार की सजावट और विलासयुक्त सामग्री देखकर उन्हे उतनी प्रसन्नता न हुई। इसी सजे हुए बँगले के चारो ओर किसानो के झोपड़े थे, फूस के घरो मे मिट्टी के बर्तनो के सिवा और सामान ही क्या था। वहाँ के लोगो मे वह बँगला कोट के नाम से विख्यात था। लड़के उसे भय की दृष्टि से देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखने का उन्हे साहस न पड़ता था। इस दीनता के बीच मे यह ऐश्वर्य

उनके लिए न्याय से कोसो दूर था। किसानो की यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बरताव करते थे कि पशुओ के साथ भी वैसा नही होता है।

पहले ही दिन कई सौ किसानो ने पण्डितजी को अनेक प्रकार के पदार्थ भेट के रूप मे उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हे बहुत ही आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किन्तु चपरासियो का रक्त उबलने लगा। नाई और कहार ख़िदमत को आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरो के घरो से दूध से भरा एक मटका आया, वह भी वापस हुआ। तमोली एक ढोली पान लाया, किन्तु वह भी स्वीकार न हुआ। असामी आपस मे कहने लगे कि धरमात्मा पुरुष आये है। परन्तु चपरासियो को तो ये नई बाते असह्य हो गई। उन्होने कहा—हजूर, अगर आपको ये चीजे पसन्द न हो न ले, मगर रस्म को तो न मिटावे। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आयेगा तो उसे नये सिरे से यह रस्म बाँधने मे कितनी दिक्कत होगी ?

यह सब सुनकर पण्डितजी ने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता ?

एक चपरासी ने साहस बाँधकर कहा—इन असामियो को आप जितना गरीब समझते हैं, उतने गरीब ये नही हैं। इनका ढग ही ऐसा है, भेष बनाये रहते हैं। देखने मे ऐसे सीधे-सादे मानो बेसींग की गाय हैं, लेकिन सच मानिए, इनमे का एक-एक आदमी हाईकोरट का वकील है।

चपरासियो के इस वाद-विवाद का प्रभाव पण्डितजी पर कुछ न हुआ। उन्होने प्रत्येक गृहस्थ से दयालुता और भाईचारे का आचरण करना आरभ किया। सबेरे आठ बजे तक वह गरीबो को बिना दाम औषधियाँ देते, फिर हिसाब-किताब का काम देखते। उनके सदाचरण ने असामियो को मोह लिया। मालगुजारी का रुपया जिसके लिए प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलाम की आवश्यकता होती थी, इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानों ने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकार की दिनोदिन बढ़ती हो।

(३)

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजा के पालन-पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीज के लिए अनाज देते और मजूरी और बैलों के लिए रुपये, फसल कटने पर एक का डेढ़ वसूल कर लेते। चाँदपार के कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैत का महीना था। फसल कट-कटकर खलियानों में आ रही थी। खलियानों में से कुछ नाज घर आने लगा था।

इसी अवसर पर कुँवर साहब ने चाँदपारवालों को बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैत का महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा।

बूढ़े मलूका ने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिक से बेबाक हो सकता है? कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देंगे। हमारी गर्दन तो सरकार की मुट्ठी में है।

कुँवर साहब—आज कौड़ी-कौड़ी चुकाकर यहाँ से उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो।

मलूका (विनय के साथ)—हमारा पेट है, सरकार की रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए। जो कुछ उपज है वह सब सरकार ही की है।

कुँवर साहब से मलूका की वाचालता सही न गई। उन्हें इस पर क्रोध आ गया, राजा रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरी-खोटी सुनाई और कहा—कोई है! जरा इस बुड्ढे का कान तो गरम करे, बहुत बढ़-बढ़कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकाने की इच्छा से कहा, किन्तु चपरासियों की आँखों में चाँदपार खटक रहा था। एक तेज चपरासी कादिर खाँ ने लपककर बूढ़े की गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा जमीन पर जा गिरा। मलूका के दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे। बाप की ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। दोनों झपटे और कादिर खाँ पर टूट पड़े। धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा। खाँ साहब का पानी उतर गया, साफ़ा अलग जा गिरा। अचकन के टुकड़े-टुकड़े हो गये। किन्तु जबान चलती रही।

मलूका ने देखा, बात बिगड़ गई। वह उठा और कादिर खाँ को

छुड़ा अपने लड़कों को गालियाँ देने लगा।

जब लड़कों ने उसी को डाँटा, तो दौड़कर कुँवर साहब के चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थ मे बिगड़ गई थी। बूढ़े के इस विनीत भाव का कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवर साहब की आँखों से मानो अंगारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखों के सामने से दूर हो जा। नही तो ख़ून पी जाऊँगा।

बूढ़े के शरीर मे रक्त तो अब वैसा न रहा था, किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुनकर बोला—सरकार, बुढ़ापे मे आपके दरवाजे पर पानी उतर गया और तिसपर सरकार हमी को डाँटते है। कुँवर साहब ने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनो लड़के सरोष बोले—सरकार, अपना रुपया लेंगे कि किसी की इज्जत लेंगे?

कुँवर साहब (ऐंठकर)—रुपया पीछे लेंगे। पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है।

(४)

चाँदपार के किसान अपने गाँव पर पहुंचकर पण्डित दुर्गानाथ से अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवर साहब का दूत पहुंचा और ख़बर दी कि सरकार ने आपको अभी-अभी बुलाया है।

दुर्गानाथ ने असामियों को परितोष दिया और आप घोड़े पर सवार हो कर दरबार मे हाजिर हुए।

कुँवर साहब की आँखे लाल थीं। मुख की आकृति भयंकर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे।

पण्डितजी को देखते ही कुँवर साहब बोले—चाँदपारवालों की हरकत आपने देखी?

पण्डितजी ने नम्र भाव से कहा—जी हाँ, सुनकर बहुत शोक हुआ। ये तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवर साहब—यह सब आप ही के आगमन का फल है, आप अभी स्कूल

के लड़के हैं। आप क्या जाने कि संसार मे कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियो के साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमींनदारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाजे पर असामियो को बाँध-बाँधकर उलटे लटका दिया है और किसी ने चूँ तक न की। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलाये।

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमे मेरा क्या अपराध ? मैंने तो जब से सुना तभी से स्वय सोच मे पडा हूँ।

कुँवर साहब—आपका अपराध नही तो किसका है। आप ही ने तो इनको सर चढाया, बेगार बन्द कर दी, आप ही उनके साथ भाईचारे का बर्ताव करते है, उनके साथ हँसी-मजाक करते है। ये छोटे आदमी इस बर्ताव की कदर क्या जाने। किताबी बाते स्कूलो ही के लिए हैं। दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशो को इस सरकशी का मजा चखाया जाय। असामियो को आपने मालगुजारी की रसीदें तो नहीं दी हैं।

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदे तैयार है, केवल आपके हस्ताक्षरो की देर है।

कुँवर साहब (कुछ सन्तुष्ट होकर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे है। अब आप इन रसीदो को चिरागअली के सिपुर्द कीजिए। इन लोगो पर बकाया लगान की नालिश की जायगी, फ़सल नीलाम करा लूँगा। जब भूखो मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अब तक वसूल हो चुका है वह बीज और ऋण के खाते मे चढा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुजारी के मद मे नही, क़र्ज के मद मे वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उस आपत्ति का सामना करना पड़ेगा, जिससे बचने के लिए, इतने सोच-विचार के बाद इस शान्तिकुटीर को ग्रहण किया था। क्या जानबूझकर इन गरीबो की गर्दन पर छुरी फेरूँ, इसलिए कि मेरी नौकरी बनी रहे ? नहीं, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा ?

कुँवर साहब (क्रोध से)—क्या इतना कहने मे भी आपको कोई उज्र

है ? दुर्गानाथ (द्विविधा मे पड़े हुए)—जी, यो तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालय मे मैंने गवाही कभी नही दी है। सम्भव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके। अत मुझे तो क्षमा कर दिया जाय।

कुँवर साहब (शासन के ढंग से)-यह काम आपको करना पड़ेगा, इसमे आगा-पीछा की गुञ्जाइश नही। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन ?

दुर्गानाथ (दृढता के साथ)—मै झूठ कदापि नही बोल सकता, और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दो मे)—कृपानिधान, यह झूठ नही है। मैंने झूठ का व्यापार नहीं किया है। मै यह नही कहता कि आप रुपये का वसूल होना अस्वीकार कर दीजिए। जब असामी ऋणी है तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋण के मद मे वसूल करूँ या मालगुजारी के मद मे। यदि इतनी-सी बात को आप झूठ समझते है तो आपकी जबरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सच्चाई के लिए ससार मे स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे है। इस सेवक-धर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष है। अभी आपको ससार मे बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभी से आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवन मे आपको आपत्ति और निराशा के सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है, किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत।' अब अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फैकनेत से युवक खिलाड़ी हार गया।

(५)

इस घटना के तीसरे दिन चाँदपार के असामियो पर बकाया लगान की नालिश हुई। समन आये। घर-घर उदासी छा गई। समन क्या थे। देवी-देवताओ की मिन्नते होने लगी। स्त्रियाँ अपने घरवालो को कोसने लगी, और पुरुष अपने भाग्य को। नियत तारीख के दिन गाँव के गवाँर कन्धे पर लोटा-डोरी रखे अँगोछे मे चबेना बाँधे कचहरी को चले।

सैकड़ो स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे-पीछे जाते थे। मानो अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पण्डित दुर्गानाथ के लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षा के थे, एक ओर कुँवर साहब की प्रभावशालिनी बाते, दूसरी ओर किसानो की हाय-हाय। परन्तु विचार-सागर मे तीन दिन तक निमग्न रहने के पश्चात् उन्हे धरती का सहारा मिल गया। उनकी आत्मा ने कहा—यह पहली परीक्षा है। यदि इसमे अनुतीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभ के लिए इतने गरीबो को हानि न पहुंचाऊँगा।

दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला-सा लगा हुआ था। जहाँ-तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओ की पूजा हो रही थी। चाँदपार के किसान झुण्ड के झुण्ड एक पेड़ के नीचे आकर बैठे। उनके कुछ दूर पर कुँवर साहब के मुख्तार आम, सिपाहियो और गवाहो की भीड थी। ये लोग अत्यन्त विनोद मे थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानी मे पहुँचकर कल्लोले करती है, उसी भाँति ये लोग भी आनन्द मे चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाई की दूकान से पूरियो के पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी, भगवान का भरोसा है। मुकदमे की पेशी हुई कुँवर साहब की ओर से गवाह गवाही देने लगे, ये असामी बडे सरकश है। जब लगान माँगा जाता है तो लडाई-झगडे पर तैयार हो जाते है। अब की इन्होने एक कौड़ी भी नही दी।

कादिर खाँ ने रोकर अपने सिर की चोट दिखाई। सब से पीछे पडित दुर्गानाथ की पुकार हुई।

उन्हीं के बयान पर निपटारा था। वकील साहब ने उन्हे खूब तोते की तरह पढ़ा रखा था, किन्तु उनके मुख से पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेट ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। वकील साहब बगलें झाँकने लगे। मुख्तार आम ने उनकी ओर घूरकर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सबके सब उनकी ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे।

न्यायाधीश ने तीव्र स्वर मे कहा—तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेट के सामने खड़े हो ?

दुर्गानाथ (दृढतापूर्वक)—जी हाँ खूब जानता हूँ।

न्याय०-तुम्हारे ऊपर असत्य भाषण का अभियोग लगाया जा सकता है।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकील ने कहा—जान पडता है, किसानो के दूध, घी और भेट आदि ने यह काया-पलट कर दी है। और न्यायाधीश की ओर सार्थक दृष्टि से देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओ का अधिक तजुर्बा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी है।

न्यायाधीश—तो इन असामियो ने सब रुपया बेबाक कर दिया है ?

दुर्गानाथ—जी हाँ इनके जिम्मे लगान की एक कौडी भी बाकी नहीं है।

न्यायालय—रसीदे क्यो नही दी ?

दुर्गानाथ—मालिक की आज्ञा।

(६)

मजिस्ट्रेट ने नालिशे डिसमिस कर दी। कुँवर साहब को ज्यो ही इस पराजय की खबर मिली, उनके कोप की मात्रा सीमा से बाहर हो गई।

उन्होंने पडित दुर्गानाथ को सैकडो कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वास-घाती, दुष्ट। ओह, मैने उसका कितना आदर किया, किन्तु कुत्ते की पूँछ कही सीधी हो सकती है। अन्त मे विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि प० दुर्गानाथ मजिस्ट्रेट का फैसला सुनते ही मुख्तारआम को कुञ्जियाँ और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य के फल मे कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीने की आवश्यकता पड़ती।

कुँवर साहब का लेन-देन अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँ के असामियो पर कई हजार रुपये बाकी थे। उन्हे विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूली की कोई आशा नही। इस पंडित ने असामियो को बिलकुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर। अपने कारिन्दो और मन्त्रियो से समति ली। उन्होने भी यही कहा—अब वसूल

होने की कोई सूरत नही। कागजात न्यायालय मे पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उजरदारियाँ होगी। कही हिसाब मे कोई भूल निकल आई तो रही-सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाको का रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवर साहब पूजापाठ से निश्चिन्त हो अपने चौपाल मे बैठे, तो क्या देखते है कि चाँदपार के असामी झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे है। उन्हे यह देखकर भय हुआ कि कही ये सब कुछ उपद्रव न करे, किन्तु किसी के हाथ मे एक छडी तक न थी। मलूका आगे-आगे आता था। उसने दूर ही से झुककर वन्दना की। ठाकुर साहब को ऐसा आश्चर्य हुआ, मानो वे कोई स्वप्न देख रहे हो।

(७)

मलूका ने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगो से जो कुछ भूल-चूक हुई उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हुजूर के चाकर हैं, सरकार ने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहब का उत्साह बढा। समझे कि पडित के चले जाने से इन सबो के होश ठिकाने हुए है। अब किसका सहारा लेगे? उसी ख़ुर्राट ने इन सबो को बहका दिया था। कडककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पडित कहाँ गये? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुनकर मलूका की आँखो में आँसू भर आये। वह बोला—सरकार उनको कुछ न कहे। वे आदमी नहीं, देवता थे। जवानी की सौगन्ध है, जो उन्होने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगो को बार-बार समझाते थे कि देखो, मालिक से बिगाड करना अच्छी बात नहीं। हमसे एक लोटा पानी के रवादार नहीं हुए। चलते-चलते हम लोगो से कह गये कि मालिक का जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक है। हमने आपका बहुत खाया-पिया है। अब हमारी यही विनती सरकार से है कि हमारा हिसाब-किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले, बताया जाय। हम एक-एक कौडी चुका देगे, तब पानी पियेगे।

कुँवर साहब सन्न हो गये। इन्ही रुपयो के लिए कई बार खेत कटवाने

पड़े थे। कितनी बार घरो मे आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे-कैसे दण्ड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब-किताब साफ करने आये हैं। यह क्या जादू है।

मुख्तार आम साहब ने कागजात खोले और असामियो ने अपनी अपनी पोटलियाँ।

जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान-पूँछ हिलाये उसने सामने रख दिया। देखते-देखते सामने रुपयो का ढेर लग गया। ६००० रुपया बात की बात मे वसूल हो गया। किसी के जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्याय की विजय थी। कठारता और निर्दयता से जो काम कभी न हुआ, वह धर्म और न्याय ने पूरा कर दिखाया।

जब से ये लोग मुकद्दमा जीतकर आये तभी से उनको रुपया चुकाने की धुन सवार थी। पण्डितजी को वे यथार्थ मे देवता समझते थे। रुपया चुका देने के लिए उनकी विशेष आज्ञा थी। किसी ने अन्न वेचा, किसी ने बैल, किसी ने गहने बन्धक रखे, यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पण्डितजी की बात न टाली। कुँवर साहब के मन मे पण्डितजी के प्रति जो बुरे विचार थे, वे सब मिट गये। उन्होने सदा से कठोरता से काम लेना सीखा था। उन्ही नियमो पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हे प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलता मे बहुत बड़ी शक्ति है।

ये आदमी मेरे हाथ से निकल गये थे। मै उनका क्या बिगाड़ सकता था? अवश्य वह पण्डित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमे दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि वह नि.स्पृह और सच्चा पुरुष था।

(८)

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यो न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टि मे उसका गौरव नही होता। हरी दूब भी किसी समय अशर्फियो के मोल बिक जाती है। कुँवर साहब का काम एक

नि स्पृह मनुष्य के बिना रुक नहीं सकता था। अतएव पण्डितजी के इस सर्वोत्तम कार्य की प्रशसा कवि की कविता से अधिक न हुई।

चाँदपार के असामियो ने तो अपने मालिक को कभी किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाकोंवाले असामी उसी पुराने ही ढङ्ग से चलते थे। उन इलाकों मे रगड-झगड सदैव मची रहती थी। अदालत, मारपीट, डॉट-डपट सदा लगी रहती थी। किन्तु ये सब तो जमींदारी के शृङ्गार है। बिना इन सब बातो के जमींदारी कैसी ? क्या दिन-भर बैठे-बैठे वे मक्खियॉ मारे ?

कुँवर साहब इसी प्रकार पुराने ढङ्ग से अपना प्रबन्ध सँभालते जाते है। कई वर्ष व्यतीत हो गये। कुँवर साहब का कारोबार दिनोंदिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होन ५ लड़कियो के विवाह बड़ी धूमधाम के साथ किये, परन्तु तिस पर भी उनकी बढती मे किसी प्रकार की कमी न हुई। हॉ शारीरिक शक्तियॉ अवश्य कुछ-कुछ ढीली पड़ गईं। बडी भारी चिन्ता यही थी कि इस बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्य का भोगनेवाला कोई उत्पन्न न हुआ, भांजे, भतीजे और नवासे इस रियासत पर दॉत लगाये हुए थे।

कुँवर साहब का मन अब इन सासारिक झगडो से फिरता जाता था। आखिर यह रोना-धोना किसके लिए ? अब उनके जीवन-नियम मे एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी-कभी साधु-सन्त धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वय भगवद्गीता और विष्णु पुराण पढते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी। परमात्मा की कृपा और साधु-सन्तो के आशीर्वाद से बुढापे मे उनके एक लडका पैदा हुआ। जीवन की आशाएँ सफल हुईं। दुर्भाग्यवश पुत्र के जन्म ही से कुँवर साहब शारीरिक व्याधियो से ग्रस्त रहने लगे। सदा वैद्यो और डाक्टरो का तॉता लगा रहता था। लेकिन दवाओ का उलटा प्रभाव पड़ता।

ज्यो-त्यो करके उन्होने ढाई वर्ष बिताये। अन्त मे उनकी शक्तियो ने जवाब दे दिया। उन्हे मालूम हो गया कि अब ससार से नाता टूट जायगा। अब चिन्ता ने और धर दबाया—यह सारा माल-असबाब इतनी बडी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ ? मन की इच्छाएँ मन ही मे रह गईं। लडके का विवाह भी न देख सका। उसकी तोतली बाते सुनने का भी सौभाग्य न हुआ।

हाय, अब इस कलेजे के टुकड़े को किसे सौंपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लड़के की माँ स्त्री-जाति, न कुछ जाने न समझे। उससे कारबार सँभलना कठिन है। मुख्तारआम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने है, परन्तु सबके सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आफ वार्ड्स के सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा, कोई उधर। अनाथ बालक को कौन पूछेगा? हाय मैंने आदमी नहीं पहचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालक के दिन फिर जायँ। उसके हृदय मे करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेगे। मैं उस देवता का चरण धोकर माथे पर चढ़ाता। आँसुओ से उनके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे।

(९)

ठाकुर साहब की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई। अब अन्तकाल आ पहुँचा। उन्हे पंडित दुर्गानाथ की रट लगी हुई थी। बच्चे का मुँह देखते और कलेजे से एक आह निकल जाती। बार-बार पछताते और हाथ मलते। हाय! उस देवता को कहाँ पाऊँ। जो कोई उसके दर्शन करा दे, आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ। प्यारे पंडित, मेरे अपराध क्षमा करो। मै अन्धा था, अज्ञानी था। अब मेरी बाँह पकडो। मुझे डूबने से बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस खाओ। हितार्थी और सम्बन्धियो का समूह सामने खड़ा था। कुँवर साहब ने उसकी ओर अधखुली आँखो से देखा। सच्चा हितैषी कहीं देख न पडा। सबके चेहरे पर स्वार्थ की झलक थी। निराशा से आँखे मूँद लीं। उनकी स्त्री फूट-फूटकर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पड़ी। वह रोती हुई पास जाकर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस असहाय बालक को किस पर छोड़े जाते हो? कुँवर साहब ने धीरे से कहा—पण्डित दुर्गानानाथ पर। वे जल्द आवेगे। उनसे कह देना कि मैने सब कुछ उनकी भेट कर दिया। यह मेरी अन्तिम वसीयत है।

प्रश्नावली

(१) दुर्गानाथ के चरित्र की आलोचना कीजिए और उसपर अपनी निष्पक्ष सम्मति प्रकट कीजिए।

(२) क कुँवर साहब ने किसानों के साथ कैसा व्यवहार किया और उसका क्या परिणाम हुआ ?

ख दुर्गानाथ की सत्यवादिता का असामियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

ग कुँवर साहब को दुर्गानाथ की याद कब आई और क्यों ?

(३) निम्नलिखित अवतरणों का अर्थ प्रसग के साथ लिखिए—

अ इस दीनता के बीच में यह ऐश्वर्य उनके लिए न्याय से कोसा दूर था।

ब बूढ़े के शरीर में अब रक्त तो वैसा न रहा था, पर कुछ गर्मी अवश्य थी।

स किताबी बातें स्कूल हो के लिए हैं, दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है।

द. सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है, पर उसकी भी सीमा है।

(४) निम्नलिखित मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए —

बग़लें झाँकना, कुत्ते की पूँछ का सीधा न होना, रुपये का डूब जाना, साख जाती रहना, होश ठिकाने होना, डूबती नाव पार लगाना।

(५) इन कथनों की आलोचना कीजिए —

अ कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती, तब तक हमारी दृष्टि में उसका गौरव नहीं होता।

ब, सच्चाई का रुपए से कोई सम्बन्ध नहीं।

(६) शहादत, वसीयत, गुनाह, उज्र, सरकना का अर्थ लिखिए।

मुनमुन

श्री भारतीय एम० ए०

(स० १९५१)

आपका जन्म संवत् १९५१ है। आपका पूरा नाम सत्यजीवन वर्मा एम० ए० है। आजकल आप प्रयाग में रहते हैं। आप हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग के सुपरिटेंडेंट है। आप लेखक-संघ प्रयाग के सयोजक तथा सघ के मुखपत्र 'लेखक' के सम्पादक हैं।

आप निरभिमान, उदार और सरल प्रकृति के है। आप हिन्दी के गद्य-पद्य के सुयोग्य लेखक है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में भी आपकी पूर्ण पहुँच है। आप कहानी और प्रहसन लिखने में सिद्धहस्त हैं।

आपकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं—

गल्प-सग्रह—मिस ३५ का पति निर्वाचन, मुनमुन, आख्यानत्रयी, गृहिणी, भूकम्प।

अनुवाद—स्वप्नवासवदत्ता, दर्पण, प्रायश्चित्त, प्रेम की पराकाष्ठा।

'मुनमुन! मुनमुन!'—तुतली भाषा मे पुकारता हुआ वह चार बरस का लडका बकरी के काले कनकटे बच्चे के पीछे दौड रहा था। मुनमुन उमग मे कूदता, उछलता, कभी लड़के की ओर देखता, पास आता, फिर छलॉग मारकर चक्कर काटने लगता। लड़का उसे पुचकारकर, हाथ की मिठाई दिखाकर, ललचाकर अपने पास बुलाना चाहता। उसे पकड़कर गले लगाने की उसकी बड़ी अभिलाषा हो रही थी, परन्तु वह नटखट मुनमुन—लड़के के बहलावे मे नही आना चाहता था। ज्यो-ज्यो वह मुण्डा लड़का अपनी हल्दी मे रॅगी धोती सॅभालता हुआ उसके पीछे दौड़ता, त्यो-त्यो वह मुनमुन और मैदान दिखाता था। इसी बीच लड़के के और साथी आ पहुँचे।

साथियो ने लडके को घेर लिया। सभी उसे आदर और सद्भाव से देखने लगे, जैसे वही अकेला उन सबके बीच भाग्यवान् हो। नगे-धडंगे, धूलि-धूसरित एक लड़के ने उसकी ओर ईर्ष्याभरी, ललचाई ऑखो से देख कर कहा—'माधो! तुम्हे तो बड़ी अच्छी-अच्छी चीजे मिली हैं, जी।' और वह अपने साथियो की ओर इसके समर्थन की आशा से देखने लगा। माधो के

हृदय पर गर्व का प्रभाव अवश्य हो उठा। उसने अभिमान से और मुँह बिचकाकर, सिर हिलाकर कहा, 'हमारा मुंडन नहीं हुआ है? यह देखो यह पीली धोती! यह मिठाई! और नहीं तो क्या। तुम्हारा कहीं मुंडन हुआ है? तुम्हारा होगा तो तुम्हें भी मिलेगा।' प्रश्नकर्त्ता अपने भाग्य पर अवश्य दुखी हो उठा होगा, इसी से वह चुप हो गया, पर उसका एक साथी अनुभवी था। उसने कहा, 'क्यो नहीं और जब कूँच से कान छेदा गया होगा, तब न मालूम पड़ा होगा मिठाई और धोती का मतलब?'

उसने उस नवमुण्डित लड़के के कान की वाली की ओर इशारा करके कहा—कुछ व्यग्य से, कुछ अनुभवी के अभिमान से।

सब लड़के निकट पहुँचकर माधो के कानो की परीक्षा करने लगे। कानो की लुरकी मे पीतल की छोटी बाली छेदकर पहनाई गई थी। छेदन-क्रिया अभी दो ही दिन पूर्व हुई थी, इसीसे कान सूजे हुए थे, और बालियो की जड़ मे रुधिर के सूखे हुए चिह्न वर्तमान थे। परीक्षा करते-करते एक चिलबिले बालक ने उसे छू दिया। माधो 'सी' करके हट गया। उसकी आँखें सजल हो गईं। लड़का अपनी धृष्टता पर लज्जित और भयभीत हो गया। उसके साथी भी आशंकित हो चुप हो गये। सौभाग्यशाली-सम्पन्न घर के लड़के की पीड़ा का अनुभव उसके गरीब साथी अवश्य करते हैं। माधो चुपचाप अपने कानो की बात सोच रहा था और उनकी पीड़ा की मात्रा से मुनमुन के कष्ट की मात्रा का अन्दाज लगता था।

वह सोचता था, 'मेरे कान तो जरा छेदे गये है, पर उस बेचारे का तो एक कान थोड़ा-सा काट ही लिया गया। कान काटने पर, कान छेदने से दर्द जरूर कुछ अधिक होता होगा।' यह उसके बाल-मस्तिष्क की तर्कशक्ति ने निश्चय किया। वह मुनमुन के प्रति स्नेह और सहानुभूति के भाव से भर गया। उसे इच्छा हुई, मुनमुन को पकड़कर प्यार करने और उसके कान की परीक्षा करने की। मुनमुन अपनी माँ के थन मे मुँह मारता हुआ, अपनी छोटी दुम हिलाता हुआ, तन्मयता से दूध पी रहा था। उसकी माँ जुगाली करती हुई, कभी-कभी रुककर प्रेम और सन्तोष-भरी दृष्टि से अपने बच्चे को देख लेती—सूँघ लेती थी। माधो ने सोचा—

'इस समय मुनमुन को पकड़ने का अच्छा अवसर है।'

उसने अपनी इच्छा अपने साथियों से प्रकट की। बाल-सेना तुरन्त इस काम के लिए तैयार हो गई। घेरा डाल दिया गया। मुनमुन गिरफ्तार हो गया। फरार असामी पकड़ लिया गया। किसी ने अगली टाँगे पकड़ीं, किसी ने पिछली। माधो ने उसके गले मे अपनी छोटी बाँहे डाल दी। सब उसे लेकर आँगन मे रूखने के लिए डाले गये पुआल के 'पैर' पर पहुँचे। बैठकर सब मुनमुन का आदर-सत्कार करने लगे। मुनमुन की माँ बच्चो को सचेत करने के लिए कभी-कभी उनकी ओर देखकर 'मे-मे' कर देती, मानो वह कहना चाहती हो, 'बच्चो, देखो मुनमुन का कान न दुखाना!'

मुनमुन अपनी आव-भगत और लाड़-प्यार से जैसे ऊब रहा था। मनुष्यो के प्यार की निस्सारता जैसे वह अजपुत्र खूब समझता हो। वह अच्छी तरह कसकर पकड़े जाने पर भी अवसर पाकर कूद-फाँद मचाकर निकल भागने का प्रयत्न करता, विवशता मे 'मे-मे' कर माँ को पुकारता, लाचार हो आँखे मूँदकर चुप हो जाता। लडके उसे कुछ खिलाने की नीयत से उसका मुँह खोलना चाहते, वह दाँत बैठा लेता। वे उसे पुचकारते, वह अनसुनी कर देता। वे पीठ पर हाथ फेरते, वह हाथ नही रखने देता। पता नही, उस छोटे बकरे के अल्प जीवन की किस घटना ने उसे मनुष्यो से शकित कर दिया था।

संसार मे अज्ञान अथवा अभ्यास ही भय की गुरुता की उपेक्षा वा अपेक्षा का कारण होता है। मुनमुन ने धीरे-धीरे अभ्यास से आशंका के महत्त्व को अपेक्षणीय वस्तु समझना सीखा। अब वह अभ्यस्त हो गया था, बच्चो के उपद्रवों का सामना करने मे—धीरे-धीरे उसके जीवन मे नित्य ये उपद्रव इतने बार घटने लगे कि वह उनके प्रति एक प्रकार की ममता का अनुभव करने लगा। उसे भी अच्छा लगता, उन बच्चो का उसे दौड़ाना, दौड़ाकर पकड़ना, पकड़कर उसकी साँसत करना, उसकी पीठ पर चढ़ना, उसके कान पकड़कर उसे खेत की ओर ले जाना, मुँह खोलकर उसमे बल-पूर्वक कुछ खाने की चीजे ठूँस देना। बच्चो के साथ इस प्रकार उसके पूरे वर्ष बीत गये। अब वह उन्हे एक-एक कर पहचानने भी लगा। उसके अज-मस्तिष्क

मे बच्चो के व्यक्तित्व की कल्पना निर्गुण रूप मे न रहकर सगुण रूप मे रहने लगी। इसका प्रमाण उसका आचरण था। वह उस बाल-समुदाय मे से माधो को तुरन्त पहचान लेता, उसके पास बिना बुलाये ही—उपेक्षा करने पर भी—बार-बार हटाते जाने पर भी—जा पहुँचता था। अन्य उसके साथियो मे से वह उनके गुण और अच्छे बुरे आचरणो के अनुसार, उसी मात्रा मे उनसे स्नेह व निर्लिप्सा प्रदर्शन करता। इसी से हम कहते हैं कि वह बकरी का बच्चा भी मनुष्यो की परख कर सकता था।

माधो और मुनमुन की मैत्री, अब कुछ-कुछ आध्यात्मिक स्नेह की सीमा तक पहुँच रही थी, इसे कहते हमे सकोच नहीं होता। बकरे अध्यात्म या उसके किसी रूप का साक्षात् करने के अधिकारी है या नहीं—यह प्रश्न ही दूसरा है, परन्तु हमारे देखने मे वह मुनमुन अपने साथी माधो के हृदय के भावो के समझने मे असमर्थ होता था, समझने की चेष्टा करता था और उनके प्रति सहानुभूति रखने लगा था। लड़का जब माता या पिता की डाट खाकर अपनी किताबे ले एक कोने मे पहुँच दुखी होकर उन्हे उलटकर उनकी आवृत्ति करने बैठता, तो उस समय मुनमुन उसके पास पहुँच उसकी पीठ से अपनी पीठ रगड़ उसे मनाता और अवसर पाकर उसकी पुस्तक हड़प करने की चेष्टा करता। माधो के छीनने पर वह इस प्रकार भाव-भरी आँखो से उसकी ओर देखता, मानो कह रहा हो, 'माधो, इन्हे मुझे खा जाने दो, ये मेरे ही योग्य है। इन सफेद—नीरस पत्तो पर रँगे हुए चिह्नो मे तुम्हारे लिए देखने की कोई वस्तु नहीं है। इसका उचित स्थान मेरा उदर ही है। चलो, हम दोनो कहीं दूर—इन बखेड़ो से दूर—किसी ऐसे स्थान मे चले, जहाँ केवल हम हो, तुम हो। तुम मेरी पीठ पर चढ़कर मुझे दौड़ाना, मैं तुम्हे प्रसन्न करने के हेतु छलाँग भरूँगा। तुम मुझे हरी-हरी घास खिलाना। मै तुम्हारी गोद मे मुँह डालकर आँखे मूँद लूँगा। तुम मेरी पीठ पर सिर टेककर सुख से विश्राम करना।' मुनमुन की बाते हम समझे या न समझे (हम समझदार ठहरे) पर माधो के लिए उसकी मूकवाणी हृदय की भाषा थी।

वह माता-पिता के दड को भूलकर मुनमुन के साथ घर से निकल जाता।

फिर दिन भर वह बाग-बाग, खेत-खेत उसे लिये हुए चक्कर काटता। मुनमुन तो हरी-हरी घास देख खाने से न चूकता, पर माधो का जैसे मुनमुन को भर-पेट खिलाने ही मे पेट भर जाता था। उसकी भूख-प्यास उस काले कनकटे मुनमुन के रहते उसे सताने का साहस न कर पाती थी।

मुनमुन की आयु अब महीनो के माप से बढकर वर्षों मे ऑकी जाने लगी। माधो सात साल का हुआ। मुनमुन ३६ मास का ही था, पर वह माधो से अधिक बलिष्ठ, चतुर और फुर्तीला था। कभी-कभी जब दोनो मे रस्साकशी होती, तो मुनमुन ही माधो को घसीट ले जाता, पर यह सब केवल विनोद या खीचा-तानी के लिए ही होता था। यो कभी माधो को मुनमुन ने दिक़ नही किया। वह उसके पीछे फिरता, वह उसके पीछे लगा रहता। दोनो ऐसे हिले-मिले थे, मानो बहुत पहिले के परिचित हो। मुनमुन को देखकर जब माधो के साथी लड़के उसकी प्रशसा करते, 'अजी, इसके सींग कैसे सुन्दर हैं। जरा-सा तेल लगा दिया करो माधो। इसके बाल कैसे चमकते है जी। हाथ फेरने मे बडा अच्छा लगता है। अजी खूब तैयार है माधो तुम्हारा मुनमुन।' और वे माधो की ओर अपनी सौन्दर्य प्रियता की अनुभूति से प्रेरित होकर इस आशा से देखते, जैसे माधो यदि उन्हे ऐसा कहने और अपने मुन-मुन को प्यार करने से रोकेगा नहीं तो वे अपने को धन्य समझेंगे। माधो अपने मुनमुन की प्रशसा सुनता, तो उसके हृदय मे मुनमुन के प्रति स्नेह की आग प्रबल हो उठती। उसके जी मे एक अज्ञात गुदगुदी होती। वह लपककर मुनमुन को गले लगाकर चूमने और प्यार करने लगता। ऐसे अवसर पर उसके बाल-साथी मुनमुन को सुहलाने की अपनी साध पूरी करने से नही चूकते।

नैसर्गिक सौन्दर्य-प्रियता और निस्स्वार्थ प्रेम के ये भाव बच्चो को अपने को भूल जाने मे सहायक होते। ये तन्मय होकर माधो के मुनमुन की सेवा-सुश्रूषा मे लग जाते। उनका मुनमुन के प्रति स्नेह और सहानुभूति 'भक्तो' की भक्ति से कम नही थी।

मनमुन पर सभी छोटे-बड़े की ऑखे लगी थी। अपनी-अपनी भावना के अनुसार स ब उसे अपनी ऑखो से देखते, परन्तु मुनमुन ने जैसे कभी इसकी

परवाह ही नहीं की, वह मस्त रहता अपने चरने-फिरने और कुलेल करने मे। उसे किसी की दृष्टि और कुदृष्टि की आशका जैसी थी ही नहीं। माधो के रहते उसने कभी इस विषय पर सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

मुनमुन के जन्म के पश्चात् उसकी माता बकरी ने कम-से-कम एक दर्जन बच्चे दिये होगे। उसकी माता की कई पीढियो ने इसी प्रकार बच्चे और दूध देकर अनेक वर्षों से स्वामी के कुल की सेवा मे अपने कुल की मर्यादा बनाये रखी थी। मुनमुन की माँ अपने उदर के अनेक शिशुओ मे केवल मुनमुन ही को देखकर मानो उसका साक्षात् अनुभव कर सकी थी कि उसके बच्चे भी इतने बड़े हो सकते थे। नहीं तो उसने यही समझा था कि जीवन मे उसका धर्म केवल बच्चे देना, दूध देना और इसी मे सफल मनोरथ होने के निमित्त—खाना, पीना और निश्चित् जुगाली करना है।

मुनमुन को अब माता से उतना सरोकार न रहता और इसी से कदाचित् उसके प्रति उसका उतना स्नेह नही दिखाई पड़ता, जितना कि जन्म के बाद कुछ महीनो तक था, परन्तु उस बकरी के हृदय मे जैसे अब भी मुनमुन के प्रति कोई भाव छिपा था। वह उसे माधो के साथ खेलते या धूप मे चारपाई पर लेटे देख जैसे सन्तोष की आँखो से दोनो को निहारकर आशीर्वाद देती थी। मुनमुन कभी-कभी उसके पास पहुँचकर उसकी नाँद से कुछ भूसी-चोकर खा लेता। वह छीन-झपटकर खाने मे अपने धर्म की मर्यादा समझता, उसकी माँ उसकी सीनाजोरी पर उदासीनता प्रकट करती हुई सन्तोष से जुगाली करना ही अपना कर्तव्य समझती थी।

मुनमुन की खातिरन कभी-कभी माधो भी उसकी माँ की देखभाल किया करता। उसकी इच्छा होती कि फिर मुनमुन अपने बचपन की भाँति अपनी माँ का दूध पीता। कभी-कभी वह उसे पकड़कर उसका मुँह उसके थन तक लगा देता, पर मुनमुन उसे अपने छोटे भाइयो का अधिकार समझ उससे मुँह फेर लेता। माधो का मानुषी हृदय उस पशु के इस गुप्त भाव का कदाचित् अनुमान नहीं कर पाता था। सभव है, कभी समझ मे आवे, परन्तु उस समय इसे वह मुनमुन की धृष्टता और अपने स्वामी

की इच्छा की अवहेलना समझता था और इसी आधार पर वह अपनी न्यायवृत्ति के अनुसार मुनमुन को दण्ड देता।

उसका दण्ड मुनमुन प्रसन्नता से स्वीकार करता और दण्ड ही क्या होता—छोटे-छोटे हाथो के दो-एक थप्पड़ या पीठ पर दो-एक घूँसे। मुनमुन इन दण्ड-प्रहारो पर केवल अपना 'सहर्ष स्वीकार' प्रदर्शन करता और उसके पश्चात् मानो उसके प्रायश्चित्त मे अपना शरीर हिलाकर वह गर्द झाड़ देता या सिर हिलाकर अपने सींग नीचे कर देता। फिर दण्डित और दण्ड-विधायक दोनो मित्र की भाँति किसी ओर विचरण करने चल देते।

इस प्रकार कुछ दिन और बीते। माधो अब आठ बरस का हो गया। उसका मुनमुन चार साल का पट्ठा हुआ। दोनों देखने मे सुन्दर लगते। माधो को देखकर उसका पिता प्रसन्न होता। माँ अपने को धन्य समझती। दोनो के मन मे आशा का दीपक और भी प्रकाशमान होता जान पड़ता। मुनमुन की बूढ़ी माँ अब और भी बूढ़ी हो चली थी। अब वह दूध न देतीं, उसके बच्चे न होते। यदि बकरी की माँ को कोई अधिकार अपने बच्चो पर रखने का है तो उसी अधिकार से वह भी अपने मुनमुन को देखती, उसे देखकर सुखी होती थी। वह कुछ सोचती थी या नहीं; पर उसकी मुद्रा से यह भाव प्रकट हो सकता था कि वह अपने बुढ़ापे मे अपनी आँखो के सामने अपनी एक सन्तान को देखकर सुखी थी और यदि पशु को भी परमात्मा का स्मरण करने का अधिकार है, तो वह निश्चय उस समय परमात्मा का स्मरण करती थी, जब उसे और लोग पुआल पर बैठी आँखे मूँदे जुगाली करते हुए देखते थे। उसके परमात्मा का क्या रूप था, हम नहीं कह सकते, परन्तु यह निश्चय है, उस पशु की कल्पना मे परमात्मा का आकार, मनुष्य-सा कदापि न होगा। क्यो? इसका उत्तर वह बकरी या उसकी सन्तान दे सकेगी।

माधो मुनमुन को गाड़ी मे जोतने का स्वप्न देखने लगा। वह सोचता था, यदि एक गाड़ी हो जाय तो मै भी मुनमुन को जोतकर सैर करने निकलूँ। उस समय उसके अन्य साथी उसकी ओर किन आँखो से देखेंगे—इसकी कल्पना वह बालक कर लेता था, और उसी कल्पना के परिणाम-स्वरूप अपने हृदय मे आई हुई प्रसन्नता से विह्वल होकर वह पिता से गाड़ी बनवा देने का

आग्रह करता। नित्य अपने प्रस्ताव को कार्य रूप मे परिणत होते देखने की इच्छा करता। पिता 'नही, नही' करता, पर मुनमुन को वह ऐसे अवसर पर ऐसी आँखो से देखता जैसे वह सोचता हो कि यही इस झगडे का घर है।

मुनमुन ने मनुष्यो की भाषा सीखने व समझने का प्रयत्न नही किया था। यद्यपि वह इन्ही के बीच रहता आया है, परन्तु वह उनकी छिपी हुई हृदय की भावनाएँ जैसे भाँपने के योग्य हो गया था। इधर कुछ दिनो से उसे ऐसा जान पडा, मानो उसके प्रति लोगो का ध्यान अधिक आकृष्ट हो रहा है। उसे देखकर लोग आपस मे कुछ कहते सुनते थे। कभी-कभी उसे उठाकर उसके बोझ का जैसे अन्दाज भी लोग लगाते थे।

मालिक के घर भी कुछ ऐसी तैयारियाँ या नित्य के साधारण वातावरण मे परिवर्तन होते दिखाई देने लगे, जिसे देख मुनमुन को अपने बचपन के किसी कटु अनुभव की स्मृति कष्ट देने लगती। स्मृति बहुत धुँधली और मन्द हो चुकी थी। उसकी पीडा की मात्रा यद्यपि अधिक न थी, पर उसके कारण उसे हृदय मे एक ऐसी आशका का उदय होते दीख पडा, जिसे मुनमुन का अज-मस्तिष्क सुलझा न सका। वह इसी हेतु कुछ चौका हुआ, कुछ आशकित-सा रहने लगा। माधो यह बात न समझ सका। वह कैसे समझता, कान तो एक ही बार छेदा जाता न, फिर क्या डर था? माधो ने अपने 'मुण्डन' मे मुनमुन के सिर मे सिन्दूर लगाते, उसके गले मे माला डालते देखा था। उसे प्रसन्नता हो रही थी कि उसके 'टूण्डन' पर फिर उसके मुनमुन का शृङ्गार होगा—उसकी पूजा होगी। वह इस पर प्रसन्न था कि उसका मुनमुन इस बार बडा-सा, सुन्दर-सा है। अबकी बार वह स्वयं भी शृङ्गार करेगा और उसे सजाकर वह अपने साथियो को गर्व से दिखायेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

कैसे क्या हुआ—हमने उस बलि-विधान को अपनी आँखो देखा नहीं, और देखकर भी हम देखने मे समर्थ न होते। पर, दूसरे दिन प्रात.काल हमने माधो को मुनमुन की खोज मे पागल की भाँति इधर-उधर घर के कोने-कोने मे झाँकते देखा। द्वार पर नीम की शीतल छाया मे भैरवी बज रही थी।

घर मे स्त्रियाँ मगल-गान कर रही थी। बाहर बिरादरी के भोज की तैयारी

में नौकर-चाकर व्यस्त थे। जानकार चतुर रसोइये, अपनी कार्य-कुशलता की डींग हाँक-हाँककर, अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाने का दावा कर रहे थे। छप्पर से छाये हुए, टट्टियों से घिरे चौपाल के एक कोने में मुंशीजी चिलम फूँकते हुए चूल्हे पर चढ़े 'देग' की देख-रेख में लगे थे। इधर कम लोग आते थे। माधो भी उधर आकर अपने मुनमुन की खोज नहीं पा सकता था। वह क्या समझता कि उसका मुनमुन, इस समय, देवी के चरणों में गति पाकर अपने शरीर का, इस महोत्सव के अवसर पर आये हुए अतिथियों के सम्मुख 'प्रसाद' रूप में अर्पण करने के निमित्त, 'देग' में छिपा है।

लोग अपनी-अपनी धुन में मस्त थे। माधो अपने मुनमुन की खोज में परेशान था। वह किससे पूछता? मुनमुन का पता उसे कौन बतलाता—क्या उसके घरवाले या उस समय वहाँ उपस्थित लोग उसे बतलाते? यदि बतलाते तो क्या बतलाते? बतलाकर क्या समझाते? माधो विक्षिप्त की भाँति भटकता हुआ बकरी के पास चला। मुनमुन की अनुपस्थिति में उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसकी माँ ही उसे अपने बच्चे का पता बतला सकती है। वह बाड़े में बँधे पशुओं के बीच से बचकर कोने में बँधी बकरी के पास पहुँचा। बकरी निश्चिन्त बैठी 'पागुर' कर रही थी।

उसके गले में बाँह डाल, उसकी रूखी भूरी पीठ पर सिर छिपाकर माधो सिसक-सिसक रोने लगा। उसकी अन्तर्वेदना की करुण पुकार किसने सुन पाई? यदि कोई सुन सका होगा, तो वही बकरी या मनुष्यों का वह परमात्मा, जिसे वे सर्वत्र वर्तमान समझते हैं।

रोते-रोते माधो की हिचकियाँ बँध रही थीं। आँसुओं के कारण भीगी पीठ की आर्द्रता का अनुभव कर वह बकरी कभी-कभी प्रश्नात्मक नेत्रों से माधो की ओर देखती। माधो उसकी आँखों से आँखें मिलते ही दुःख से विह्वल हो उठता। वह मुनमुन के विछोह से विकल हो तड़प-तड़पकर रोने लगता। उसके घर का वातावरण उत्सव के चहल-पहल और गाने-बजाने से मुखरित हो रहा था। वायु-मण्डल धूप और सुगन्ध से लदा था। एक ओर हवन के हव्य और आज्य की धूमराशि—दूसरी ओर भोज के व्यंजनों की सोंधी सुगन्ध। इन सबसे अप्रभावित वह बकरी बैठी जुगाली कर रही

थी और माधो मुनमुन के लिए भूमि पर पडा तडप रहा था। एक ने, मानो मानव-समाज की हृदय-हीनता का आजीवन अनुभव कर दार्शनिक की उदासीनता प्राप्त की थी—दूसरा मानव-जाति की सभ्यता की वेदी के सोपान की ओर घसीट जाने पर, बकरी के बच्चे की भाँति छटपटा रहा था।

प्रश्नावली

(१) 'मनुष्य के लाड़-प्यार की निस्सारता जैसे वह अज-पुत्र खूब समझता है, मुनमुन के पास इस निस्सारता का क्या प्रमाण था ?

(२) 'पता नहीं उस छोटे से बकरे के बाल्य-जीवन की किस घटना ने उसे मनुष्यों से सशंकित कर दिया था।' वह कौन-सी घटना थी ?

(३) इन अवतरणों के अर्थ प्रसङ्ग के साथ स्पष्ट करो—

क 'संसार मे अज्ञान या अभ्यास ही भय की गुरुता की उपेक्षा का कारण है।'

ख 'उसके अज-मस्तिष्क मे बच्चों के व्यक्तित्व की कल्पना निगुर्ण रूप में न रहकर सगुण रूप मे रहने लगी।'

ग. 'परन्तु यह निश्चय है उस पशु की कल्पना में परमात्मा का आकार मनुष्य-सा कदापि न होगा।' क्यों ?

घ 'मालिक के घर भी कुछ ऐसी तैयारियाँ या नित्य के साधारण वातावरण में परिवर्तन होते दिखाई देने लगे, जिसे देख मुनमुन को अपने बचपन के किसी कटु अनुभव की स्मृति कष्ट देने लगी।'

(४) नैसर्गिक सौन्दर्य-प्रियता, दार्शनिक की उदासीनता से क्या समझते हो ?

(५) मुनमुन की जीवन-कथा संक्षिप्त रूप से लिखो।

(६) इस कहानी मे समाज पर किस प्रकार का व्यङ्ग है ?

(७) माधो और मुनमुन में स्नेह का क्रमिक विकास कैसे हुआ ?

परिवर्तन

श्री वीरेश्वरसिंह बी० ए०

कुटी के लिए एक छोटा-सा दीपक काफी है, और मनुष्य-जीवन के लिए एक छोटी-सी बात—परिवर्तन के प्रकाश मे अन्धकार के अपरिचित मुस्कराते हैं, आँखे मिलती हैं, बाते खुलती है और एक महान् क्षण मे संसार बदल जाता है। एक जरा सी नजर, एक छोटी सी आह, एक उमड़ती हुई मुस्कान—दुनिया की इन्ही छोटी-छोटी बातो मे तो उसकी आत्मिक शक्ति भरी है—कलेजे मे छुरी-सी तैर जाती है, आत्मा कसक उठती है, दिल के साथ जमीन-आसमान एक नये रङ्ग में खिल उठते हैं और हम आश्चर्य से देखते है—अरे, वह क्या ?

आज रामू के हृदय को कोई देख सकता तो वह कह उठता—'अरे क्या ?' वह लबालब हो रहा था और भरे हुए मानस मे उसकी आत्मा ऊपर उठकर खिल रही थी।

रामू फेरी लगाने निकला था। इस जीवन-स्वप्न मे, मिट्टी की पृथ्वी पर, मोम के खिलौने बनाना और बेचना कोई अनुपयुक्त रोजगार नही, और रामू यही करता था। वह मोम की चिड़िया बनाता, उसमे लाल, पीला, हरा रङ्ग देता और उन्हे एक डोरे के सहारे अपनी लकडी से झुला देता। वह रोज सुबह निकल जाता और शाम होते-होते कुछ न कुछ कमा लाता। रङ्ग-बिरङ्गी झूमती हुई चिड़ियो की पंक्ति मे बालको के मन उड़कर लटक रहते, और रामू ललचाती हुई आवाज मे गाता—

'लल्ला की चिरैया है—भय्या की चिरैया है।
जिसके होवेगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया,
वाह, वाह री चिरैया।'

चलते-चलते रामू ने आवाज लगाई—'लल्ला की चिरैया है, भय्या की चिरैया है।' उसकी भरी बेधती आवाज गाँव के घरो मे गूँज उठी। बच्चे उछल पड़े। कितने ही घरो मे 'अम्माँ ऊँ ऊँ' और रोना-ठुमकना मच गया।

रामू कहता जा रहा था—'जिसके होवेंगे खेलैया, वही लेवेगा चिरैया, वाह, वाह री चिरैया।'

यह चोट थी। बिना बच्चेवालियो ने एक गहरी सॉस भरी, और माताओ के अन्तर मे, चुपके से, एक अनिवचनीय सुख दिप उठा।

रामू चला जा रहा था। खरीदनेवाले उसे खुद बुलाते, मोल-भाव करते, और लेते या उसे लौटा देते। कितने ही बालको ने उसे बुलाया, कितनो ही ने उससे मोल-भाव किया। वह एक चिड़िया दो पैसे मे बेचता था, इससे कम मे वह किसी को न देता था। जो ले सकते वे लेते, जो न ले सकते वे मन मारकर रह जाते। एकाएक किसी ने रामू को पुकारा—'ओ चिरैयावाले।' रामू लौट पड़ा।

एक द्वार पर एक वृद्धा और उसी के पास एक पॉच साल की बालिका, उसी से लगी हुई, आधी उसी पर लदी हुई बैठी थी। रामू के पहुँचते ही वह खिल उठी। वह एक चिड़िया जरूर लेगी। भुनभुनाकर उसने कहा—'नानी, वही वह लाल-लाल सी।'

'अच्छा ठहर तो'—वृद्धा बोली—'भय्या कैसे-कैसे दिये चिरैया ?'—वृद्धा ने रामू से पूछा।

'दो-दो पैसे माई!' रामू बोला।

'ठीक बतलाओ तो ले लूँ एक इस बच्ची के लिए।'—वृद्धा ने कहा। बालिका का हृदय डुप्-डुप् कर रहा था। मन ही मन वह मना रही थी—'हे राम, यह चिरैयावाला मान जाय।' आशा, सन्देह, हर्ष, निराशा, उसके हृदय मे कुछ चुभ-से रहे थे। आकांक्षा तड़प रही थी, उम्मीद चकोर-सी ऑख लगाये बैठी थी। सौदागर क्या कहेगा ? वह क्या कहने वाला है ? यह उसके लिए भाग्य का प्रश्न था। उसके कान सुन रहे थे, जब रामू ने कहा—'नही माई, कम-ज्यादा न होगा, दो-दो पैसे तो सभी को देता हूँ।'

वृद्धा ने कहा—'अच्छा, तो तुम्हारी मर्जी, दो-दो पैसे तो बहुत है।'

सौदागर मुड़ पड़ा। लड़की का चेहरा उतर गया—उसका दिल डूब गया। उसकी आशा कहाँ थी ? चिड़िया के साथ खेलने, उसे उड़ाते हुए दौड़ने और हॅसने की ख़ुशियाँ कहाँ थी ?

'नानी, दो पैसे क्या बहुत हैं ?—उसकी आत्मा चीख रही थी।

'सौदागर, तुझे एक पैसा कम करना भी क्या बहुत है ? उसकी आकांक्षा बिलख रही थी। बालिका की बड़ी-बड़ी आँखे उस सौदागर को, उन चिड़ियो को अपनी ओर खींच रही थी। उसमे निराशा-आशा गूँगी-सी मुँह फैलाये कह रही थी—'जरा ठहरो तो, जाते कहाँ हो ?'

वृद्धा ने बालिका के सिर पर हाथ फेरकर पुचकार कर कहा—'जाने दे बेटी, दूसरा कोई आवेगा तो ले दूँगी।' इस खोखले ढाढस को जैसे बालिका ने सुना ही नहीं। वह उठी और डबडबाई आँखो से घर के भीतर चली गई।

किन्तु न जाने क्या बात थी कि आज सौदागर रामू के हृदय मे उसी भोली बालिका की निराश आँखे चुभ गईं। वह, 'नहीं' करके लौटा तो, पर उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह गङ्गा के किनारे तक जाकर बिना नहाये लौट रहा हो। उसने इस भाव को भुलाने की कोशिश की, किन्तु जाने क्यो वह स्वय उसमे भूल गया। उस पर जाने कहाँ से चिनगारियाँ बरसने लगी—नही, मै ठीक नहीं कर रहा हूँ। उस बेचारी बच्ची के कोमल हृदय पर मैं ईंट मारकर चला आया। उसका चेहरा कैसा उतर गया था। और उसकी आँखे—उफ!—कैसे देख रही थीं। × × × नहीं, नहीं × × यह ठीक नही। रोजगार का मतलब यह थोड़े ही है कि मै इस तरह बे-दिल का हो जाऊँ। क्या होता, यदि मै एक ही पैसे मे उसे दे देता तो ? × × कोई घाटे का पहाड़ तो टूट न पड़ता। न सही, एक वक्त तम्बाखू न पीता, बिना साग के खा लेता। × × बच्चो का मन तोड़ना, राम-राम भगवान की मूर्ति तोड़ना है। चलूँ दे आऊँ पर × × × × अब क्या ? अब तो इतनी दूर चला आया, और फिर, रामू, तुम भी पूरे बुद्धू हो। हाँ, रोजगार करने चले हो कि इन छोटी-मोटी बातो पर ताना-बाना बुनने। इसमें तो यह होता ही है।

'यही हाल रहा तो कर चुके अपना काम। कोई न खरीद सके तो इसमे अपना क्या वश ? राम की मर्जी है। × ×।'

रामू ने माना जागकर, ठीक से सिर उठाया। एक साँस के बहाने दिल में हिम्मत भरी। इतने तर्क-वितर्क पर भी उसने देखा कि काम नहीं चल रहा

है। कुछ है जो काट-सा रहा है, जो मस्तिष्क के तर्क से अधिक बली है।
रामू ने देखा कि चुप रहने से तो विचार उमड़ते चले आते है। जिस चीज
को वह दबाना चाहता है वह उमडी ही पडती है। इसलिए उसने सोचा कि
चिल्लाकर आवाज के बहाने, अन्दर वाली चीज का उफान बाहर कर दूँ।
इसलिए 'पर××× नहीं' के बाद उसने सिर ऊपर किया और साँस के
बहाने दिल मे हिम्मत भरते हुए कहा—'लल्ला की चि×××।' पर यह
क्या ? उसकी आवाज बैठ-सी गई थी। शब्द उसके गले मे अटक रहे।
गले मे वह जोर ही नही रह गया। उसका मन बालने को कर ही नही
रहा था। उसकी वह शक्ति कहाँ चली गई ? वह चाहता था कि बिना बोले
ही उसकी चिडियाँ बिक जायँ तो अच्छा। किन्तु किसी ने सामने से उसे
रोककर बड़ी गम्भीर आवाज मे कहा—'चले कहाँ जा रहे हो ?' रामू लौट
पडा। चाहे जो हो, वह यह न करेगा। बच्ची के खून से खींच-खींचकर
वह अपना बाग नहीं लगाना चाहता था। उसके मन मे टुटे हुए टुकड़ो मे
अपना महल उठाना उसे असह्य था। उसी दरवाजे पर पहुँचकर उसने
पुकारा—'माई, ले लो चिरैया।'

घर के अन्दर आवाज पहुँची तो वृद्धा ने कहा—'कौन है ?' पर
बालिका की आँख चमक उठी। निधि को लौटी समझ वह सुख विह्वल
हो गई। वह दौडकर बाहर गई, फिर दौड़कर भीतर आई—'अरे नानी,
वही, वही चिरैयावाला है।' वह कुहुक उठी—'चल चल, जल्दी चल, मेरी
नानी, ऊँ ऊँ ऊँ।' वह वृद्धा की उँगली पकडकर खींच ले गई।

'ले लो माई, पैसे ही पैसे ले लो।'—सौदागर ने वृद्धा को देख,
आँखों स बालिका पर आशीर्वाद बरसाते हुए कहा।

'लाओ, आखिर को इतना हैरान हुए, पहले ही दे देते तो ?'—वृद्धा
बोली।

बालिका ने झट बढ़कर एक लाल-सी चिडिया ले ली, वह खिल उठी।
वह कभी हिलती हुई चिडिया को देखती, कभी अपनी नानी को और कभी
सौदागर को। उसका शिशु हृदय सुख की एक ही तारिका से चमक उठा।

सौदागर चिडियाँ पैसे ही पैसे को दे रहा है, यह बात फैलते देर न

लगी। उसका सब माल देखते ही देखते बिक गया।

घर पहुँचकर रामू ने देखा कि मूल भी नहीं मिला। दो आने का घाटा रहा और मेहनत अलग। पर उसका हृदय आनन्द से ओत-प्रोत था। उसकी आत्मा खिल रही थी। मुस्कराते हुए पैसों की ओर देखकर वह कह उठा—रामू, तुम्हारे ऐसे खुद बिकनेवालों से रोजगार न होगा, इसके लिए काठ का हृदय चाहिए।

इतने ही में उसका छोटा बालक बाहर से दौड़ता हुआ आकर लिपट गया—'बाबू गोदी × × ×' रामू ने उसे उठाकर चूम लिया। 'आज तू बड़ा अच्छा लगता है मेरा लल्ला।' रामू ने उसे दुलारते हुए कहा। बालक गोद में और सिमट गया और रामू ने उसे फिर चूमकर हृदय से लिपट लिया।

बालक को प्यार करके जितनी शान्ति उसे आज मिल रही थी, उतनी कभी न मिली थी।

प्रश्नावली

१. इस गल्प में किस प्रकार के परिवर्तन का दिग्दर्शन कराया गया है? क्या परिवर्तन हुआ और कैसे? रामू के मन के तर्क-वितर्क को अपने शब्दों में चित्रित करो।

२. लेखक के विचार में संसार की आत्मिक शक्ति कहाँ है और वह किस रूप में प्रस्फुटित होती है?

३. इन अवतरणों का भावार्थ प्रसङ्ग के साथ लिखिए।

(क) वह लबालब हो रहा था और भरे हुए मानस में उसकी घटना ऊपर उठकर दिख रही थी।

(ख) यह चोट थी। बिना बच्चोंवालियों ने एक गहरी साँस भरी और माताओं के अन्तर में, चुपके से, अनिर्वचनीय सुख दिप उठा।

(ग) उसमें निराशा आशा, गूँगी सी मुँह फैलाये, कह रही थी—ज़रा ठहरो तो, जाते कहाँ हो?

(घ) किन्तु किसी ने सामने से उसे रोककर बड़ी गम्भीर आवाज में कहा—चले कहाँ जा रहे हो?

४. रामू ने अपने बालक को चूमते हुए कहा—'आज तू बड़ा अच्छा लगता है लल्ला!' बालक क्यों बहुत अच्छा लगता था?

५. वीरेश्वरसिंह की रचनाओं के विषय में कहा जाता है कि ये शब्दों का सुनहरा बोलता हुआ चित्र खींचते हैं, जिसमें प्रेरणा होती है।' क्या इसे सिद्ध कर सकते हो?

मौसी

श्री भुवनेश्वरप्रसाद

(१

मानव जीवन के विकास मे एक स्थल ऐसा आता है, जब वह परिवर्तन पर भी विजय पा लेता है। जब हमारे जीवन का उत्थान या पतन, न हमारे लिए कुछ विशेषता रखता है, न दूसरो के लिए कुछ कुतूहल। जब हम केवल जीवित रहने के लिए ही जीवित रहते हैं और जब मौत आती है, 'पर नहीं आती।'

बिब्बो जीवन की उसी 'मजिल' मे थी। मुहल्लेवाले उसे सदैव से वृद्धा ही जानते थे, मानो वह अनन्त के गर्भ से वृद्धा ही उत्पन्न होकर एक अनन्त अचिन्त्य-काल के लिए अमर हो गई थी। उसकी 'हाथी-से बेटो की बात' नई-नवेलियाँ उसका हृदय न दुखाने के लिए मान लेती थीं। उसका कभी इस विस्तृत ससार मे कोई था भी, यह कल्पना का विषय था। अधिकांश के विश्वास-कोष मे वह जगन्नियन्ता के समान ही एकाकी थी, पर वह कभी युवती भी थी, उसके भी नेत्रो मे अमृत और विष था। झझा की दया पर खड़ा हुआ रूखा वृक्ष भी कभी धरती का हृदय फाडकर निकला था, बसन्त मे लहलहा उठता था और हेमन्त मे अपना विरही जीवन-यापन करता था, पर यह सब वह स्वयं भूल गई थी। जब हम अपनी असख्य दु खद स्मृतियाँ नष्ट करते हैं, तो स्मृति-पट से कई सुख के अवसर भी मिट जाते है। हाँ, जिसे वह न भूली थी उसका भतीजा—बहन का पुत्र—बसन्त था। आज भी जब वह अपनी गौओ को सानी कर, कच्चे आँगन के कोने मे लौकी-कुम्हड़े की बेलो को सँवारकर प्रकाश या अन्धकार में बैठती, उसकी मूर्ति उसके सम्मुख आ जाती।

बसन्त की माता का देहान्त जन्म से दो ही महीने बाद हो गया था और तीस वर्ष पूर्व उसका पिता पीले और कुम्हलाये मुख से यह समाचार और बसन्त को लेकर चुपचाप उसके सम्मुख खड़ा हो गया था...इससे आगे की बात बिब्बो स्वप्न मे भी न सोचती थी। कोठी

यदि अपना कोढ़ दूसरो से छिपाता है तो स्वय भी उसे नही देख सकता —इसके बाद का जीवन उसका कलकित अङ्ग था।

बसन्त का पिता वहाँ रहने लगा। वह बिब्बो से आयु मे कम था। बिब्बो, एकाकी बिब्बो ने भी सोचा, चलो क्या हर्ज है, पर वह गई और एक दिन वह और बसन्त दो ही रह गये। बसन्त का पिता उन अधिकांश मनुष्यो मे था, जो तृप्ति के लिए ही जीवित रहते है, जो तृप्ति का भार नहीं उठा सकते। बसन्त को उसने अपने हृदय के रक्त से पाला, पर वह पर लगते ही उड गया और वह फिर एकाकी रह गई। बसन्त का समाचार उसे कभी-कभी मिलता था। दस वर्ष पहले वह रेल की काली वर्दी पहने आया था और अपने विवाह का निमन्त्रण दे गया, इसके पश्चात् सुना, वह किसी अभियोग मे नौकरी से अलग हो गया और कहीं व्यापार करने लगा। बिब्बो कहती कि उसे इन बातो मे तनिक भी रस नहीं है। वह सोचती कि आज यदि बसन्त राजा हो जाय, तो उसे हर्ष न होगा और उसे यदि कल फॉसी हो जाय, तो न शोक। और जब मुहल्लेवालो ने प्रयत्न करना चाहा कि दूध बेचकर जीवन-यापन करनेवाली मौसी को उसके भतीजे से कुछ सहायता दिलाई जाय, तो उसने घोर विरोध किया।

दिन दो घडी चढ़ चुका था, बिब्बो की दोनो बाल्टियाँ खाली हो गई थीं। वह दुधाडी का दूध आग पर चढ़ाकर नहाने जा रही थी कि उसके ऑगन मे एक अधेड पुरुष ५ वर्ष के लड़के की उँगली थामे आकर खड़ा हो गया।

'अब न होगा कुछ, बारह बजे. ' वृद्धा ने कटु स्वर मे कुछ शीघ्रता से कहा।

'नहीं मौसी

बिब्बो उसके निकट खडी होकर, उसके मुँह की ओर घूरकर स्वप्निल स्वर मे बोली—बसन्त। और फिर चुप हो गई।

बसन्त ने कहा—मौसी तुम्हारे सिवा मेरे कौन है ? मेरा पुत्र बे-माँ का हो गया! तुमने मुझे पाला है, इसे भी पाल दो, मैं सारा खरचा दूँगा।

'भर पाया, भर पाया'—वृद्धा कम्पित स्वर मे बोली।

बिब्बो को आश्चर्य था कि बसन्त अभी से बूढ़ा हो चला था और उसका पुत्र बिलकुल बसन्त के और अपने बाबा ·· के समान था। उसने कठिन स्वर मे कहा—बसन्त, तू चला जा, मुझसे कुछ न होगा। बसन्त विनय की मूर्ति हो रहा था और अपना छोटा-सा सन्दूक खोलकर मौसी को सौगाते देने लगा।

वृद्धा एक महीने पश्चात् तोडनेवाली लौकियो को छाकती हुई बसन्त से जाने को कह रही थी, पर उसकी आत्मा मे एक विप्लव हो रहा था। उसे ऐसा भान होने लगा, जैसे वह फिर युवती हो गई। और एक दिन रात्रि की निस्तब्धता मे बसन्त के पिता ने जैसे स्वप्न मे उसे थोडा चूम-सा लिया और ··· वह बसन्त को वक्ष मे चिपकाकर सिसकने लगी।

हो ·····पर वह बसन्त के पुत्र की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगी। वह उसे कदापि नही रखेगी। यह निश्चय था। बसन्त निराश हो गया था पर सबेरे जब वह बालक मन्नू को जगाकर ले जाने के लिए प्रस्तुत हुआ, बिब्बो ने उसे छीन लिया और मन्नू और दस रुपये के नोट को छोड़कर बसन्त चला गया।

(२)

बिब्बो का दूध अब न बिकता था। तीनो गाये एक के बाद एक बेच दी। केवल एक मन्नू की बछिया रह गई थी। कुम्हड़े और लौकी के ग्राहको को भी अब निराश होना पडता, मन्नू, पीला कान्तिहीन आलसी मन्नू, सिंदूरी चञ्चल और शरारती हो रहा था और उदासीन बिब्बो लडाका और घर-गृहस्थ।

महीने मे पाँच रुपये का मनिआडर बसन्त भेजता था, पर एक ही साल मे बिब्बो ने मकान भी बन्धक रख दिया। मन्नू की सभी इच्छाओं की पूर्ति अनिवार्य थी। बिब्बो फिर समय की गति के साथ चलने लगी। मोहल्ले मे फिर उसकी आलोचना प्रारम्भ हो गई। मन्नू ने उसका ससार से फिर सम्बन्ध स्थापित कर दिया, जिसे छोडकर यह आगे बढ़ गई थी, पर एक दिन साँझ को अकस्मात् बसन्त आ गया। उसके साथ एक ठिगनी गेहुएँ रग की स्त्री थी, उसने बिब्बो के चरण छुए, चरण दबाये और

फिर कहा—मौसी, न हो मन्नू को मुझे दे दो, मैं तुम्हारा यश मानूँगी।

बसन्त ने रोना मुँह बनाकर कहा—हाँ, किसी का जीवन संकट में डालने से तो अच्छा है, ऐसा जानता, तो मैं ब्याह ही क्यो करता ?

मौसी ने कहा—अच्छा उसे ले जाओ।

मन्नू दूसरे घर मे खेल रहा था। वृद्धा ने काँपते हुए पैरो से दीवार पर चढ़कर उसे बुलाया।

वह कूदता हुआ आया। नई माता ने उसे हृदय से लगा लिया। बालक कुछ न समझ सका, वह मौसी की ओर भागा।

बिब्बो ने उसे दुतकारा—जा दूर हो।

बेचारा बालक दुत्कार का अर्थ समझने मे असमर्थ था। वह रो पड़ा।

बसन्त हतबुद्धि खड़ा था। बिब्बो ने मन्नू का हाथ पकड़ा, मुँह धोया और आँगन के ताख से जूते उतारकर पहना दिये।

बसन्त की स्त्री मुस्कराकर बोली—मौसी क्या एक दिन भी न रहने दोगी? अभी क्या जल्दी है। पर, बिब्बो जैसे किसी दूसरे लोक पहुँच गई हो। जहाँ वह स्वर—ससार का कोई स्वर—न पहुँच सकता हो। पलक मारते मन्नू की खेल की, प्यार की, दुलार की सभी वस्तुएँ उसने बाँध दीं। मन्नू को भी समझा दिया कि वह सैर करने अपनी नई माँ के साथ जा रहा था।

मन्नू उछलता हुआ पिता के पास खड़ा हो गया। बिब्बो ने कुछ नोट और रुपये उसके सम्मुख लाकर डाल दिये—ले अपने रुपये।

बसन्त धर्म-संकट मे पडा था, पर उसकी अर्धाङ्गिनी ने उसका निवारण कर दिया। उसने रुपये उठा लिये, 'मौसी इस समय हम असमर्थ हैं; पर जाते ही अधिक भेजने का प्रयत्न करूँगी, तुमसे हम लोग कभी उऋण नहीं हो सकते।'

× × ×

मन्नू माता-पिता के घर बहुत दिनो तक सुखी न रह सका। महीने मे दो बार रोग-ग्रस्त हुआ। नई माँ भी मन्नू को पाकर कुछ अधिक सुखी न हो सकी। अन्त मे एक दिन रात-भर जागकर बसन्त स्त्री के रोने-धोने पर भी मन्नू को लेकर मौसी के घर चल दिया।

वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि मौसी के जीर्ण द्वार पर कुछ लोग जमा है। बसन्त के एक्के को घेरकर उन्होने कहा—आपकी यह मौसी है। आज पाँच दिन से द्वार बन्द है, हम लोग आशंकित है।

द्वार तोड़कर लोगो ने देखा—वृद्धा पृथ्वी पर एक चित्र का आलिंगन किये नीचे पड़ी है, जैसे वह मरकर अपने मानव होने का प्रमाण दे रही हो।

बसंत के अतिरिक्त किसी ने न जाना कि वह चित्र उसी के पिता का था, पर वह भी यह न जान सका कि वह वहाँ क्यो था।

प्रश्नावली

(१) कहानी के आरम्भ की कौन-कौन सी प्रमुख शैलियाँ है? इस कहानी का आरम्भ कैसे हुआ?

(२) इन अवतरणो का भावार्थ लिखो—

क मानव जीवन के विकास में एक स्थल ऐसा आता है जब वह परिवर्तन पर भी विजय पा लेता है।

ख इसके बाद का जीवन उसका कलंकित अंग था।

ग. बसन्त का पिता उन अधिकाश मनुष्यो में था जो अतृप्ति के लिए ही जीवित रहते है।

घ जैसे वह मरकर अपने मानव होने का प्रमाण दे रही है।

च उसका इस विस्तृत संसार में कोई भी न था, वह कल्पना का विषय था।

(३) क. मुन्नू के प्रति बिब्बो के स्नेह का विकास कैसे हुआ?

ख. जब वसन्त अपने पुत्र को लेने आया तो बिब्बो ने अपने किस मनोभाव का परिचय दिया।

ग. बिब्बो के हृदय में मुन्नू के प्रति इतने स्नेह का क्या रहस्य था?

(४) इस कहानी से लेखक ने मानव-हृदय के किस सत्य की झलक दिखाई है?

(५) 'जब हम अपनी असख्य दुःखद स्मृतियाँ नष्ट करते है तो स्मृतिपट से कई सुख के अवसर भी मिट जाते है?' बिब्बो के जीवन के प्रसंग में यह कथन क्यों दिया गया? उसकी व्याख्या कीजिए।

फूटा शीशा

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

अवस्थीजी कानपुर के बी०एन०एस०डी० कालिज के हिन्दी अध्यापक हैं। आप हिन्दी के एम० ए० है। आपने कई ग्रंथों का निर्माण किया है। आपकी गद्यगाथा तथा तुलसी के चार दल—आलोचनात्मक ग्रन्थ है। भ्रमित पथिक नामक आपका उपन्यास भी छपा है। आपकी १० कहानियों का सग्रह फूटा-शीशा नाम से प्रकाशित हुआ है। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपको साहित्य से प्रेम है, लिखने का शौक है। हिन्दी साहित्य आपसे अभी बहुत कुछ आशा करता है। आपका स्वभाव मिलनसार, हँसमुख और परिश्रमशील है।

(१)

मेरे घर के ठीक सामने ही एक गिरे हुए भवन के भग्नावशेष को समतल करके एक घर बना लिया गया है। उसमे दो कुटुम्बो के दराने होते हैं। यही इनकी आजीविका का एकमात्र आश्रय है। दोनो कुटुम्बो मे स्त्री-राज्य है, पुरुष अनुचर है, अनुमोदक है और श्रमजीवी हैं। उनमे स्वतंत्र आलाप की स्फूर्ति नही, वे केवल स्वर मिलानेवाले वाद्य-यन्त्र है। श्यामू की बहू अभी कठिनता से पँचीस वर्ष की होगी, परन्तु घूँघट के भीतर के छोटे मुँह की छोटी जीभ बिजली के पखे से भी अधिक गतिशील है। कालिका की नानी वृद्ध है, परन्तु स्वर बड़ा कर्कश है। यह श्यामू की तीन पीढ़ियो का समाचार रखती है। किसी ने उसे कुछ कहा नहीं कि वह एक से एक काली चूड़ियाँ अपने मुँह के ग्रामोफोन पर चढ़ाने लगती है और सुननेवाले दग रह जाते है।

जाति मे ये दोनो कुटुम्ब तेली थे। पक्की ईंटो की एक पंक्ति, दो दरानो की सीमा थी। तीसरे-चौथे दिन सूत रखकर यह सीधी की जाती थी, परन्तु वह अधिकतर खिसककर कालिका की नानी का हिस्सा छोटा बना देती थी। बहुत बार झगडा इस जड़ सीमा की चेतन गति के कारण हुआ करता था। सभुआ की बहू ने पहले तो सडक की ओरवाला भाग पसन्द किया, परन्तु जब उसमे गाये घुमकर अरहर खा जाने लगीं तो उसने इस बात पर लड़ना आरभ किया कि उसे पीछे का भाग मिलना चाहिए। दूसरा कुटुम्ब

इस पर बिलकुल तैयार न हुआ। कालिका की नानी वैसे तो गाय हॉकने के लिए उठती ही न थी, परन्तु यदि कोई देखनेवाला समक्ष पड़ गया तो इस प्रकार धीरे-धीरे 'हट, हट' करती हुई उठती जिससे लोग उसकी सहानुभूति देख भी ले और गाय अरहर खाकर स्वत. चली जाय। कभी-कभी मन के शत्रुभाव और दिखावटी सहानुभूति के बीच मे पड़े हुए उसके वृद्ध शरीर की विचित्र दशा देखने मे आती थी।

बड़े छप्पर की आधी फूस गिर जाने से बॉस की नसे उभर आई थी। इसके नीचे लेटकर सम्भुआ की बहू अपने मोटे, काले बच्चे को दूध पिलाती थी और तारो की ओर टकटकी लगाकर देखा करती थी। वायु के झोके. चन्द्र और चन्द्रिका तो कभी-कभी भीतर आते ही थे, परन्तु जेठ की लपटे और घाम की ऐठन दिनभर छप्पर के नीचे दिखाई देती थी। पानी बरसता था तो सम्भुआ की बहू तो किराये मे ली हुई पासवाली कोठरी मे चली जाती थी, परन्तु कालिका की नानी को बडा कष्ट होता। सम्भुआ की बहू हॅसती, वह अपनी अरहर को देखकर मुस्कराती। कालिका की नानी ने कई बार सोचा कि वह उस स्थान को छोड दे जिससे संभुआ की बहू को सुख मिले, परन्तु न वह स्वयं ऐसा कर सकती थी और न सभुआ की बहू वह चाहती थी। उससे लड़ने मे उसे सुख था। उस पर बकने और उसे बकाने से वह प्रसन्न होती थी।

संभुआ का काला लडका बरह्मा कालिका की नानी से बहुत हिला था। वह भी इसको खिलाया करती और इसी के लिए घर छोड़ने मे संकोच करती थी। यह बालक ही दोनो के लिए ऐसा अवलम्बन था, जिस पर सभुआ की बहू और कालिका की नानी दोनो अपने-अपने प्रेम वस्त्र टॉगती थी। दोनो के मिलाव का यही एक केन्द्र-बिन्दु था। संभुआ की बहू गाली देती और लड़ती, कालिका की नानी कोसती और अपशब्द कहती। कालिका की नानी भी उसका उत्तर उसी तीव्रता से देती। आंचल पसार संभुआ और बरम्हा की मृत्यु को मॉगती, परन्तु सबके नेत्र बचा-कर झट बरम्हा को गोद ले लेती और चूमकर गुड खिलाने लगती।

एक बार झगड़ा इस बात पर बढ़ा कि निकलने के मार्ग पर कौन झाड़ू दिया करे। इसका निर्णय कुछ भी न हो सका। कुछ दिनो तक किसी ने

बुहारी न दी और वह स्थान बहुत गन्दा पड़ा रहा। पुरुषों ने मिलकर यह निश्चय किया कि सात-सात दिन की पारी बाँध दी जाय, परन्तु दिनो की कमी-बढ़ती निरन्तर हो जाया करती थी और कालिका की नानी उँगलियो पर उँगलियाँ पटककर मुहल्ले भर को अपने पारीवाले दिन को गिनाया करती। झगड़े की शान्ति का कोई उपाय निश्चित न हुआ। सभुआ की बहू ने मार्ग के अपने आधे भाग मे सकही और उसके पति रघुबर को रख लिया। इनके पास किराया देने का कोई सुभीता न था। इन्होन सभुआ के भाग की सकरी गली मे ही बॉस तान लिये और उनपर टाट लपेट दिया। बर्तनो के नाम पर मिट्टी के पात्र और वस्त्रो के नाम पर मैली फटी धोतियो, गुदड़ियो और चिथड़ो के ढेर थे। रघुबर की सपत्ति मे लोहे का सूजा और पाव भर सुतली के लच्छे थे। सकही के कोप मे कुंकम की डिबिया और फूटा शीशा था।

इस नये योग से सभुआ की बहू कलह मे बलवत्तर हो गई। सकही झगड़े मे सभुआ की बहू से भी आगे थी। वह अपने आश्रयदाता की सहायता करना अपना धर्म समझती थी। नीम पर जमा हुआ पीपल का पादप यदि उससे रस ग्रहण करता है, तो शस्त्रधारी बारी के समक्ष पहले अपनी ही गर्दन झुका देता है। कालिका की नानी को नई आपदा का सामना करना था। उसकी जिह्वा की गति मे, मुँह की भावभगी मे, हाथों के फैलाव मे दूनी गति बढ़ गई। मुँह से फिचकुर बहुत शीघ्र निकलने लगता था। नोचे हुए केशो का ढेर भी अधिक बढ़ जाता था, परन्तु झगडा न मिटा। सकही का पति रघुबर वैसा ही निष्क्रिय था, जैसे कि घर के और पुरुष।

(२)

सकही का दूसरा नाम झुरही भी था। खड़े हुए बॉसो मे फटे टाट के भीतर से झुरही का रंग-ढंग मैंने बहुधा अपने कमरे से देखा था। वह प्रातःकाल ही उठ जाती थी और बिना अन्य किसी कार्य मे प्रवृत्त हुए अपनी टीन की डिबिया मे तर्जनी डुबोकर कुंकुम का एक बिंदु दोनो भौंहो के बीच मे अंकित कर लेती थी। इस कार्य मे, उसी डिब्बी के ढकने मे चिपके हुए एक तिकोनिये शीशे का उसे सहयोग लेना पड़ता था। झुरही गोरी थी, ऐसी

जैसी भद्र घर की गोरी महिलाएँ होती हैं। चरस पीने का उसे बडा व्यसन था। इसी के कारण वह तबाह थी। शरीर सूखकर कॉटा हो रहा था। अभी अवस्था न होने पर भी खाल पर झुरियाँ पड़ी थीं। स्नान करने से वहुत घबराती थी। शरीर पर काफी मैल जमा हुआ था। मोटी फटी धोती कभी किसी धोबी का मुँह देखती थी। झुरही स्वय कपडे धोना जानती ही न थी।

सकही कई आक्रमणो का सामना कर चुकी थी। दरिद्रता का, ज्वर और आयु का राजयक्ष्मा तो शरीर को क्षीण कर ही रहा था, चरस की चसक ने रक्त और मांस सब को सुखा दिया था। लूटे हुए सौन्दर्य मे भग्नावशेष अब भी खड़े थे। झुरही जीवन के किसी सुख से हिलगी न थी। उसका सारा सुख-संसार सिमटकर चरस की फूँक मे केन्द्रित हो गया था। लम्बी लौ निकालकर खाँसी के झटको से तमतमाई हुई लोहित आकृति को ताम्रवर्ण से मिलान ही उसकी प्रतिक्षण की समस्या थी। चरस उसके अनुराग का सोहाग थी।

चरस के लिए झुरही सब कुछ कर सकती थी। इसके लिए वह परिचित-अपरिचित सबके सामने हाथ फैला देती थी, उसी के लिए उसने बूढे रघुवर को अपना पति बना रखा था। उसे भोजनो की चिन्ता न थी, उसे वस्त्रो की परवाह न थी, वह चाहती थी केवल चरस। छ आने की पुड़िया देख-कर तो वह थिरक उठती। धुएँ के खींचने मे उसे आन्तरिक आनन्द मिलता। रघुबर टाट सीकर दिन भर मे जो कुछ लाता, उसका बडा भारी भाग चरस के लिए पृथक् कर लिया जाता था। रोटी कभी-कभी न बनती, परन्तु चरस का आयोजन अनिवार्य थे। रघुबीर भी चरस का भक्त था, परन्तु इतना नहीं।

दरिद्र नारायण के सहयोग से सकही और रघुवर के निजी आलसी स्वभाव ने उसके घर को घूर बना रखा था। मिट्टी के पात्रो मे गहरी काई लगी थी। गुदड़ी की दुर्गन्ध बडी दूर से नाको तक पहुँच जाती थी। लटके हुए चिथड़े कभी-कभी छितरकर कालिका की नानी की रसोई मे पहुँचकर झगड़ा खड़ा कर दिया करते थे। नमी से रक्षा के लिए एक लम्बा टीन का टुकड़ा पड़ा था। दो-दो ईटें तकिये के स्थान पर रखी थीं। छाते के कपडो की चादर, जिसका कोई आकार न था, सकही के शरीर की रात्रि के शीत

से रक्षा करती थी। बूढ़ा रघुबर भी उसी मे कभी-कभी सिसियाता हुआ घुस जाता था। घिसी हुई कथरी के टुकड़े की उभरी हुई सीवन झुरही की नीली नसो की भाँति दिखाई देती थी। झुलसनेवाली वायु से झुरही का बड़ा परिचय था। सूर्य की प्रखर किरणो से उसकी मैत्री थी। शिशिर की कँपानेवाली हवा से उसका अनुराग था।

झुरही पति से प्रति-दिन लड़ा करती थी। अधिकतर झगड़ा खरचे के लिए होता। झुरही रघुबर के पास कई वर्षों से थी। वह अपनी सारी सम्पत्ति इसे प्रसन्न करने के लिए चरस की चिलम पर रख चुका था। मैंने सुना था कि वह बहुत अच्छा कपड़ा पहनता था और बहुत स्वच्छ रहता था। झुरही भी बहुतो के देखने की वस्तु थी, परन्तु इस दम्पति के मेल का महल नग्न स्वार्थ पर ही बना था। यदि एक दिन भी चरस मे कोई ढील हुई तो झुरही ने गाली बकना आरम्भ कर दिया और रघुबर ने मारना। रघुबर को झुरही की उतनी ही आवश्यकता थी, जितनी पेट भरने के लिए दाल भात की होती है।

अब दरिद्रता की अवस्था में जो कलह इस दम्पति मे होती थी, उसमे मार झुरही की ओर से और गालियाँ रघुबर की ओर से आरम्भ होती थीं। कई बार रघुबर ने उसे घर से निकल जाने की धमकी दी और वह इस प्रस्ताव से सहमत भी हो गई, परन्तु एक आध दिन के बाद वह फिर रघुबर के ही यहाँ आ जाती। एक दिन सुराही के फूटे शीशेवाली सोहाग की डिब्बी न जाने कहाँ खो गई। झुरही व्याकुल थी। उसका भाल सूना था। वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते व्यथित हो गई। श्यामू की बहू ने समझाया, परन्तु उसका रोना बन्द न हुआ। रघुबर ने पुचकारा, परन्तु उसका क्रोध उबल उठा। दो दिनो तक वह बिना खाये-पिये कथरी मे मुँह छिपाये रोती रही। अन्त मे जब रघुबर ने कहीं से डिब्बी को निकाल कर झुरही के हाथ में दे दिया, तो उसके चेहरे मे कुछ मुस्कुराहट दौड़ी। उसने फूटे शीशे को सामने करके अपने भाल पर कुंकुम का एक बिन्दु रख लिया। झुरही कुछ और प्रसन्न हुई, परन्तु शीघ्र ही तमककर खड़ी हो गई और कर्कश स्वर से कहने लगी—'तूने ही मेरी डिब्बी चुराकर रख ली थी।'

रघुबर ने कहा—'नहीं भाई, मैं क्या जानूँ, मुझे तो यहाँ पड़ी मिली है।'

झुरही ने फिर तमककर कहा—'तू झूठा है, आज से तेरा मुँह न देखूँगी।' इतना कहती हुई वह निकलकर चल दी। पीछे भूलकर भी उसने न देखा। रघुबर समझा था एकाध दिन मे ठोकर खाकर वह आ ही जायगी। परन्तु झुरही के उपवास के शरीर मे क्रोध का भोजन शक्ति दे रहा था। वह कई दिन तक न आई। रघुबर ने सकही को भुलाने का प्रयत्न किया और भूल भी गया। कभी-कभी कुछ ध्यान आ जाता, परन्तु उसकी कर्कशता उस चित्र को सहसा मिटा देती।

मैने इस विच्छेद की सारी गाथा सुनी। मुझे इस बात पर बड़ा कौतूहल था कि पति से इतनी विमुख, उसे मारने मे भी सकोच न करनेवाली सकही के लिए अपने सोहाग-चिह्न मे क्यो इतना आकर्षण है। इस रहस्य को मै समझता न था। झुरही का मैने कई बार पता लगाया, परन्तु कोई परिणाम न हुआ। कुंकुम लगाने के बाद वह मुझे प्रतिदिन पालागन किया करती थी। उसके सहसा चले जाने से मुझे कुछ कमी-सी दीखने लगी और झगड़े की कमी के कारण मुहाल कुछ सूना मालूम होने लगा।

(३)

एक वर्ष व्यतीत हो गया। पेंसिल की लिपि की भाँति झुरही की स्मृति भी मेरे मन मे अस्पष्ट हो गई थी। मै लखनऊ की नरही गली मे घूम रहा था अनायास एक कोने से एक शब्द सुनाई दिया—'बाबू एक पैसा।'

मेरा ध्यान उधर गया। झुरही उर्फ सकही मुझे देखकर मुस्करा तो दी, परन्तु लज्जित हो गई। मैंने मुसकराते हुए कहा—'सकही, यहाँ कहाँ? कानपुर क्यो छोड़ आई। रघुबर तुझे याद करता है। मुहाल सूना हो गया।'

सकही के मुँह पर रङ्ग दौड़ गया। उसने पहले पालागन किया और फिर कहने लगी, 'बाबूजी मुझे बड़ा कष्ट था। आपकी बड़ी कृपा है। मुझे और किसी की परवाह नहीं।'

सकही के भाल पर कुंकुम दमक रहा था। मुझे उस पर बड़ी दया आई। मैंने उसे एक रुपया निकालकर दे दिया। सकही ने उसे आग्रह-पूर्वक वापस कर दिया और केवल एक आना लेकर कृतकृत्य हो गई। मैंने

थोड़ा हँसकर कहा—सकही, यह तो बता कि तू चरस अब पीती है न?'

सकही ने दाँत निकालकर थोड़ा मुसकराते हुए कहा—'बाबूजी, वह कैसे छूट सकती है? वह तो मरने पर ही छूटेगी।'

मै हँस दिया। मैने कहा—'सकही, कानपुर चलोगी?' वह कुछ न बोली। मै चलने ही को था कि अचानक कौतूहलवश एक प्रश्न मेरे मन मे उदित हुआ जो बहुत दिनो से मुझे विकल कर रहा था। मैंने पूछा—'सकही यह तो बतला कि तू रघुबर से तो प्रेम नही करती, परन्तु कुंकुम से तेरा इतना स्नेह क्यो है? तेरा फूटा शीशा कहाँ है?'

'बाबू, यह न पूछो। फूटा शीशा और कुंकुम मेरे पास अब भी है। उससे किसी का कोई सम्बन्ध नही। इतना कहते कहते उसके मन मे उन्माद दौड़ गया। वह तिलमिला-सी गई। 'बाबू, अब मै जाती हूँ' इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बड़े बेग से हजरतगज की ओर भागती हुई चली गई। मै खड़ा ही रह गया।

यह मेरा अपमान न था। फूटे शीशे और कुंकुम के नाम से ही उसे कोई ऐसी गहरी ठेस का स्मरण हुआ कि सारी सजग परिस्थितियाँ विचार-बवण्डर मे पड़कर किसी अज्ञात प्रदेश मे लीन हो गई। इस उन्माद के परिचय से मुझमे एक नये कौतूहल की सृष्टि हुई। कानपुर लौटकर मैंने सकही का जीवन-वृत्तान्त विस्तारपूर्वक जानने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कोई विशेष जानकारी प्राप्त न हो सकी। रघुबर भी कुछ न बता सका। वह केवल उसे बुरा भला कहता रहा। उसमे सकही का समाचार सुनकर तनिक भी उत्कण्ठा जागृत न हुई। प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता था कि वह इस बात से भयभीत है कि कही सकही कानपुर न आ जाय।

(४)

सारा ससार सतुष्ट है और सारा ससार असन्तुष्ट। प्रत्येक प्राणी को इस खिचड़ी का भाग मिलता है। कही दाल अधिक, कहीं भात अधिक। मेरे भाग मे असन्तोष अधिक है। इस असन्तोष मे सकही के इतिहास का कौतूहल बड़ा महत्त्व रखता था। मैने उसके पूर्व जीवन के सम्बन्ध मे बड़ी खोज की, परन्तु बहुत दिनो तक कोई सफलता न हुई।

एक दिन सरकार की ओर से जन-संख्या की गणना हो रही थी। बेकार व्यक्तियो का एक समुदाय गणो के पीछे घूम रहा था। रघुबर के घर मे किसी ने सकही का भी नाम लिखा दिया था। सकही के पिता का नाम अधीन तेली लिखा था। जब निरीक्षण के दिन सकही का कोई पता न लगा, तो गणको और श्यामू की बहू मे कुछ हॅकरा-तुकारी होने लगी। कालिका की नानी भी कुछ बड़बड़ा रही थी, मैने ऊपर से यह विवाद सुना। मेरे बीच मे पड़ने से मामला शान्त हो गया। मुझे एक नये तत्त्व का पता लगा कि झुरही अधीन की लड्की है।

अधीन तेली मुहल्ले का एक प्रसिद्ध रईस था। उसके पास लोग दो लाख सम्पत्ति का अनुमान करते थे। अपनी जाति के मदार-वृक्षो मे वह एरण्ड द्रुम था। उसने न जाने कितने तेलियो का मांस-मदिरा छुड़ाकर उन्हे कण्ठी पहनवा दी। मदार और सैयद बाबा की मनौती क स्थान पर महावीर और बजरङ्गबली की अर्चना आरम्भ हो गई। तेलियाने भर मे अधीन की बडी धाक थी। वह बड़ा उदार था, बड़ा पटु था। बड़े-बड़े लोगो से उसका मेल था। उसकी मृत्यु को अभी दो वर्ष भी न हुए थे। उसका वृद्ध सेवक रजना मेरे यहाँ बहुधा आया-जाया करता था, इस बार रजना आया, तो मैने झुरही का हाल पूछा।

'बाबूजी आपको नही मालूम क्या?'—रजना ने कहा—'बेचारी को दु:ख ही मिला।'

मैने फिर उत्सुकता से कहा—'भाई, मुझे पूरा-पूरा हाल बतलाओ।'' वह बोला—'निरते मे सुनना बाबूजी, मे अभी एक घण्टे मे आऊॅगा।'

मैं बड़ी अधीरता से रजना की राह देखता था। झुरही के सम्बन्ध मे न जाने कितने काल्पनिक चित्र मेरी आँखों के सामन नाचने लगे। उसकी फटी धोती, उसका कुंकुम, उसका फूटा शीशा, उसका हाथ फैलाकर नरही मे भिक्षा माँगना। युवावस्था के उसके रूप और लावण्य की भी कल्पना मूर्तिमान हुई। सुन्दर साड़ी मे झिलमिलाती हुई ज्योति भी मेरी आँखों मे भासित होने लगी। इतने मे रजना आ गया।

'कहो बाबू, बैठे हो!'

'हाँ भाई, सुनाओ। बड़ी अधीरता है।' रजना टाट पर बैठ गया। तमाखू पर दो हाथ फटाफट मारकर रजना ने कथा आरम्भ की। लगभग एक घंटे में उसने सारी कथा समाप्त कर दी। मेरे चित्त मे विचित्र कुतूहल था, सहानुभूति थी, करुणा थी और झुरही के लिए असीम अनुकम्पा थी। तीन दिनो के पश्चात् मुझे लखनऊ जाने का अवसर फिर मिला। मैंने झुरही का बहुत अन्वेषण किया परन्तु कोई निश्चित पता न लगा। एक दिन ताँगे पर मै गणेशगंज जा रहा था कि एक पतली औरत दौड़ती हुई दिखाई दी। कई बालक उसके पीछे थे। मैने सकही को पहचान लिया और बुलाया। वह रुकी और कुछ बडबडाती हुई बैठ गई। मुझे वह बिल्कुल न पहचान सकी। उसके विचार-विधान के तन्तु किसी विशेष झटके से उलझ गये थे। वह बीच सड़क पर बैठ गई। धीरे से सिन्दूर की डिबिया निकाली। फूटा शीशा लेकर तर्जनी से एक बिन्दु अपनी दो मोटी-मोटी भौहो के बीच मे रखा और झट से डिबिया छिपाकर भागी। मैंने ताँगे को छोड दिया और झुरही के पीछे चल दिया। थोड़ी देर मे वह एक अत्यन्त प्राचीन विशाल महल के गिरे हुए एक कोठे में घुस गई। वह किसी धनी का किसी समय का विशाल प्रासाद था, जो चमगीदड़ो और कपोतों के लिए रिक्त कर दिया गया था।

इस लैला-मंजिल मे कई भिक्षुक रहते थे। टूटे-फूटे प्रासादो को बड़े लोग कलक समझकर जब परित्याग कर देते है तो कगालो के भाग्य खुलते हैं। धनिक का बालक जितनी ही अधिक सख्या मे अपनी पाठ्य-पुस्तके पुरानी करता है, उतना ही दरिद्र विद्यार्थियो को लाभ होता है।

बड़ी देर तक मै बाहर खड़ा रहा। झुरही निकली नही। मै उसकी कोठरी मे घुसा। एक कोने मे बैठी वह कुछ बड़बड़ा रही थी। निकट ही रोटियो के बासी टुकड़े पड़े थे। मैंने कई बार 'झुरही' 'झुरही' कहा। उसने मुझे देखा और नेत्र नीचे कर लिये। फिर बड़बड़ाने लगी। वह जो कुछ बक रही थी, वह न कोई भाषा थी और न बोली। मैं समझ गया कि झुरही मुझे पहचान नहीं सकी। उसकी विक्षिप्तता सीमा तक पहुँच गई है। कुछ दुखी, कुछ शोकार्त होकर मैं वहाँ से चल दिया।

लखनऊ मे मै मुन्शी राजाराम मुंसिफ के यहाँ ठहरा था। उनका मुझसे पुराना परिचय था। मुझे अन्यमनस्क देखकर वह हँसी उडाने लगे। मुझे सकही की कुछ चरचा करनी पड़ी और पुरा वृत्तांत सायंकाल के लिए स्थगित कर दिया गया। शाम भी आई। प्रसग छिड़ा। मैने उसकी कथा आरम्भ की—

'' तुम्हे यह तो मालूम ही है कि कानपुर मे मेरे घर के आस-पास दराना होता है और तेली रहते है। इन तेलियो में अधीन नाम का एक प्रसिद्ध धनिक तेली रहता था। मुनिया नाम की उसकी एक सुन्दरी कन्या थी। वह चौथी कक्षा तक पढ़ी थी। अधीन बड़ा सुधारक था, अतएव वह अपनी कन्या का किसी अच्छे घर में विवाह करना चाहता था। मुनिया केले की भाँति कोमल, किसलय की भाँति सुकुमार और फूल की भाँति सुगन्धित थी। अधीन के कुछ निजी विचार कन्या के विवाह के सम्बन्ध मे थे। उसने उन्हे किसी तर्क अथवा विवेक पर स्थिर न किया था। वह पढ़ा-लिखा भी कम था। लक्ष्मी की एकागी उपासना के कारण सरस्वती की आराधना का उसे बिलकुल अवकाश न था। उसे जो कुछ भी व्यावहारिक कुशलता थी, वह सत्सग के कारण। उसके सिद्धान्त सामाजिक रूढियो से प्रस्तुत केवल परिवर्तन-मात्र थे। जब तेलियो मे अच्छा वर न मिला तो इस सोलह वर्ष की कन्या को अधीन ने छत्तीस वर्ष के एक तेली ज़मींदार के साथ व्याह दिया। इस जमींदार का नाम विनोद था। थोड़ा बहुत पढ़ा भी था। हृदय मे स्नेह था और भावनाओ मे नियन्त्रण। सूतनपुरवा मे इसकी मढ़ी थी। पुराने जातीय ससार इसके घर से उतने बहिष्कृत न थे, जितने अधीन के यहाँ से।

सुन्दर नव-वधू के रूप मे मुनिया सूतनपुरवा आई। अनुपम लावण्य था। पति के लिए अनुपम अनुराग था। विनोद कुछ ढलता हुआ युवा परन्तु सुदृढ प्रेमी था। मुनिया जब उसे पहली रात्रि को मिली तो उसने एक डिब्बी से सिंदूर निकालकर तर्जनी से भौहो के बीच मे एक बिन्दु रख दिया। आकृति जगमगा उठी। मुनिया पति को देख रही थी। विनोद ने फिर मुनिया के शीशे को उसके समक्ष कर दिया। झिलमिले प्रकाश मे मुनिया के सामने कुंकुम बिन्दु दिखाई दिया। विनोद का हाथ काँप गया। डिब्बी

गिर गई, शीशा फूट गया। मुनिया ने झट उसे उठाकर बन्द करके अपने निकट रख लिया।

राजाराम बड़ी अधीरता से झुरही का वृत्तान्त सुन रहे थे। कथामाला का आगामी पृष्ठ आर्द्र था, अतएव उँगलियाँ फिसल गईं। वाणी कुछ ठिठकी और मैं सहसा रुक गया। 'हाँ' तो क्या हुआ?'—राजाराम ने कहा।

मैंने साहस-पूर्वक फिर कहना आरम्भ किया—'इतने ही क्षणिक साक्षात् से इस दम्पति मे अपार प्रेम दौड़ गया। मुनिया के नेत्र हँसते थे। विनोद ने मुनिया की ठोढ़ी को हाथ से पकड़ा। कपोलो पर सुन्दर रंगो का आना-जाना प्रारम्भ हो गया, प्रेम और लज्जा बारी-बारी दिखाई देने लगे। आधी स्वीकृति मे आधी अस्वीकृति उलझी हुई थी।

'नीचे बन्दूक़ का शब्द सुनाई दिया। शृङ्गाररस के स्वप्न को तोड़कर दंपति खड़े हो गये, तुरंत धड़ाधड़ के शब्द ने घर को आक्रान्त कर लिया। 'डाकू! डाकू!!'—यह शब्द सुनाई दिया। विनोद ने घबराकर किवाड खोल दिये। मुनिया सिकुड़कर बैठ गई। डाके का घमासान कई घंटे रहा। विनोद ने लक्ष्मी की रक्षा मे प्राण खोये। मुनिया के आभूषण शीघ्रता से न उतर सके। हनुमान पर्वत-समेत सजीवनी बूटी उठा ले गये। शृङ्गार पर करुणा का रस पुत गया।'

राजाराम के आँसू छलछला आये। मेरा भी कंठ रुँध गया। 'बड़ी कारुणिक गाथा है' राजाराम ने साँस खीचकर कहा 'फिर क्या हुआ? मुनिया सकही कैसे हो गई?'

मैंने कथा फिर आरंभ की। राजाराम ध्यान से सुनने लगे।

'इस आपत्ति मे भी मुनिया ने फूटे शीशेवाली सिंदूर की डिब्बी को दुःख भगवत् नाम की भाँति न छोड़ा। चतुष्पदो के खुरो से मसली हुई अनायास पतिता एक कली की भाँति मार्ग के एक कोने पर निःसंज्ञ पड़ी हुई मुनिया पुलिसवालो को मिली। वह तुरत अस्पताल भेजी गई। उसकी करुण कहानी करुणा की निजी कहानी थी। आततायियो ने उसे सभी प्रकार से नष्ट किया था और अर्धमृत अवस्था मे मार्ग में छोड़कर चले गये थे। अस्पताल से अच्छी होकर मुनिया बाहर तो निकली, परन्तु उसके लिए सब द्वार अवरुद्ध

थे। उधर देवर ने डाकूओ के घर रही हुई भावज को घर मे आने देना ठीक न समझा, इधर पिता इस प्रयत्न में थे कि किसी प्रकार मुनिया सूतनपुरवा ही मे रहे। दोनो ओर के द्वार जब झटके से आवृत्त हो गये तो मुनिया ने उसी द्वार पर धरना देना अधिक उचित समझा, जहाँ पर इतने दिनो तक पली थी। उसे विश्वास था कि उसके माता, पिता, भाई, ताऊ इत्यादि उसके लिए सजीव हृदय रखते है। परन्तु उसे धोखा हुआ। समाज के भय ने वात्सल्य प्रेम को अछूत की भाँति बहिष्कृत कर दिया था।

'तीन दिन तक निरन्तर रोती हुई मुनिया अधीन के द्वार पर पड़ी रही। फूटे शीशे को सामने लेकर वह कुंकुम का बिन्दु प्रतिदिन अंकित कर लेती थी।। दूर से भोजन दिया जाता था। एक दिन वह ग्लानि से भरकर चुपके से निकल गई। अधीन ने सपरिवार आश्वासन की साँस ली। कई दिनों के बाद सुना गया कि मुनिया रघुबर के घर बैठ गई है। उसकी स्त्री अभी-अभी मरी थी। उसने इसे अच्छा भोजन और नये वस्त्र दिये। इसने उसकी भूख को शान्त किया। रघुबर के बहुत से दुर्गुणो मे चरस को मुनिया ने अपनाया और मुनिया के अवगुणो मे गन्दगी को रघुबर ने अगीकार किया। इस दम्पति का सबन्ध बहुत बड़े सुदृढ़ स्वार्थ पर अवलम्बित था। मुनिया का रघुबर मे स्वार्थ पहिले तो भोजन और वस्त्रो का था और फिर चरस के पैसो का रह गया। रघुबर का स्वार्थ मुनिया से पहिले उतना ही था जितना कि एक बलीवर्द का स्वार्थ उस भग्न दीवार से होता है जिसके सघर्ष से वह अपनी खुजली मिटाता है। आगे चलकर वह स्वार्थ घिसकर केवल इस अभिमान से हिल गया कि अधीन की लड़की को उसने रखा है। अन्त तक मुनिया उसके सिर का बोझ हो गई और वह इससे छुटकारा पाने का ही अधिक इच्छुक था।

मुनिया चरस पीते-पीते पीली पड़ गई। सूखकर काँटा हो गई। उसे दम आने लगी। इसी से उसका नाम सकही और झुरही पड़ गया। वह इस नाम से तनिक भी क्रुद्ध न होती थी। रघुबर के घर मे टाट की कोठरी के भीतर वह कभी कुंकुम का बिन्दु लगाना न भूली। वह नहाती न थी पर फूटे शीशे को हाथ मे लेकर सेन्दुर अवश्य लगा लेती थी। एक दिन लड़कर वह कानपुर

से भाग आई। उस बार जब मैं लखनऊ आया था तो उसने मुझे पालागन किया था। अबकी बार वह नितान्त विक्षिप्त हो गई है। मुझे पहचानी नहीं। अब भी वह सेन्दुर का टीका फूटे शीशे के सहारे लगाना नही भूली है।'

मुनिया की कथा सुनकर राजाराम ने एक आह भरी और कहा—'उसे इस फूटे शीशे से कदाचित् इसलिए स्नेह है कि विनोद ने अपने हाथ से उसके सेन्दुर-बिन्दु लगाया था।'

'मेरा भी यही खयाल है।' मैंने उत्तर दिया।

'भाई, झुरही का देखना चाहिए।'

'अवश्य, कल चलूँगा। मुझे तो सकही की गाथा बहुत दर्द-भरी प्रतीत होती है।'

'मुझसे तो आज खाया न जायगा।' कुछ देर तक दोनो चुप हो रहे। निश्चय हुआ कि कल हम लोग सकही को देखने प्रात काल ही जायँगे।

रात्रि को मुझे कई बार स्वप्न मे पगली झुरही के दर्शन हुए। वह फूटे शीशे को सामने रखकर कुकुम बिन्दु लगा रही थी। राजाराम ने भी इसी प्रकार का स्वप्न देखा। प्रात.काल सकही के दर्शनो का उतावलापन हम लोगो का व्यग्र करने लगा। हम लोग शीघ्र ही लैला मंजिल पहुँचे।

मंजिल के थोडी दूर पर एक भीड़ दिखाई दी। बड़ा समारोह था। हम लोग ताँगे से उतरकर सीधे लैला मजिल की टूटी कोठरी मे प्रवेश करने लगे जिसमे झुरही रहती थी, आज सारा मजिल सूना था। एक कोने मे अन्धा और लूला भिक्षुक पड़ा था। उससे ज्ञात हुआ कि एक भिखारिन मोटर से दब गई है। वहीं सब भिक्षुक भागकर गये है। हम लोग आशंका से सिहर उठे। वेग से पैर उठाते हुए जनसंकुलता को चीरकर आगे बढ़े। एक स्त्री रक्त से लथपथ पड़ी थी। सिर फट गया था। पसलियाँ पिस गई थीं। हाथ छाती पर रखा था। वह सेदूर की डिब्बी को जोर से पकड़े था। फूटा शीशा उसी के भीतर था।

'यही झुरही है?'—राजाराम ने पूछा। मुझसे कोई उत्तर देते न बना, एक आह निकलकर वायु मे मिल गई।